卐 श्री वीतरागाय नम 卐

षोडशकारण भावना

★

रचयिता

स्व० प० सदासुखजी कासलीवाल

जयपुर

★

प्रकाशक

वीर पुस्तक भण्डार

मनिहारो का रास्ता, जयपुर

भाद्रपद स० २०२१] [मूल्य १)२५

मुद्रक —श्री वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर।

॥ श्री वीतरागाय नम ॥

स्व० श्री प० सदासुखजी कृत

षोडश कारण भावना

षोडश कारण भावना हू श्रावक के भावने योग्य है। षोडश कारण भावना का फल तीर्थंकरपना है। इसही करि तीर्थङ्करप्रकृति का बंध अव्रती सम्यग्दृष्टिहू कै होय अर देशव्रती श्रावकहू क होय अर प्रमत्तसंयतहू क होय है। सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकृति तीर्थंकरि प्रकृति है। इसतैं अधिक पुण्यप्रकृति त्रैलोक्य मे नाहीं है। उक्त च गोमट्टसारे कर्मकांडे—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥ ९३ ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति के बंध का आरम्भ कर्मभूमि का मनुष्य पुरुषलिंगधारी ही क होय है, [illegible] गति में आरम्भ नाहीं होय। अर केवली [illegible] के चरणारविंदकै [illegible] होय, [illegible]

निकट बिना तीर्थंकर प्रकृति का बंध के योग्य भावना की विशुद्धता नाहीं होय है। अर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रथमोपशमसम्यक्त्व में होय तथा शेषत्रिक जो द्वितीयोपशम तथा क्षयोपशम तथा क्षायिक इन चार सम्यक्त्व में कोऊ एक में होय है। इस तीर्थंकर प्रकृतिबंध के कारण षोडशकारण भावना है। ये भावना समस्त पाप का क्षय करने वाली, भावनि के मलकू विध्वंस करने वाली, श्रवण पठन करते संसार के बंध छेदने वाली निरंतर भावने योग्य हैं।

अब यहां षोडश भावना की षोडश जयमाला पढ़ि महान् पुण्य उपार्जन करिये है। तिनही का अर्थकू भावनिका विशुद्धता अर अशुभ भावनिका नाश के अर्थि लिखिए है।

अथ समुच्चय जयमाला का [illegible] ही लिखिये है—हे संसार-सम[illegible]

करने वाला, हे
हे शिव!, जो
तिहारे ताईं
मेरी शक्तिकू
भावार्थ—[illegible]
नियमसू तीर्थंकर
। बहुरि

कुगति नाहीं होय, कई तो विदेहक्षेत्रनिविषै गृहाचार मे षोडशकारण भावना केवली के अथवा श्रुतकेवली के निकट भाय उसी भवमें तपकल्याण ज्ञानकल्याण निर्वाणकल्याण देवनिकरि पाय निर्वाणकू प्राप्त होय हैं। अर केई पूर्व जन्म में कवली श्रुतकेवली के निकट भावना भाय सौधर्म स्वर्गकू आदि लेय सर्वार्थसिद्धि पर्यंत अहमिंद्र उपजि करि फिर तीर्थंकर होय निर्वाण पावै हैं। कोई पूर्व जन्म में मिथ्यात्व के परिणाम म नरक का आयु बन्ध किया, फिर कवली श्रुतकवली का शरण पाय सम्यक्त्व ग्रहणकरि षोडशकारण भावना भाय नरक जाय नरकतैं निकसि तीर्थंकर होय निर्वाणकू प्राप्त होय हैं। पूर्व जन्म में षोडशकारण भावना करि तीर्थंकरप्रकृति बांधे है ताकैं पंच कल्याण की महिमा होय है। अर जो विदेहनिमें गृहस्थपना म तीर्थंकर प्रकृति बांधै सो उसही भव में तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याणनि में इन्द्रादिककरि पूजन पाय निर्वाणकू प्राप्त होय हैं। केई विदेहक्षेत्रनि में मुनि क व्रत धरया पाछैं केवली क निकट षोडशकारण भावना भाय उसी भव में तीर्थंकर होय ज्ञान, निर्वाण दोय कल्याण की पूजा को प्राप्त होय है। तप कल्याणक ताकैं पहले ही भया, तातैं नाहीं होय है। जाकैं तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध होय जाय सो भवनत्रिक देवनि म, अन्य मनुष्य तिर्यञ्चनिमें, भोगभूमि मे, स्त्री नपुंसक एकेन्द्रिय विकल-चतुष्कादि

पर्यायनि म नाहीं उपजै है, अर तीसरी पृथ्वीतें नीचे नाहीं उपजै है। याही तैं षोडशकारण भावना कुगति का निवारण करने वाली है। बहुरि षोडशकारण भावना हुआ पाछै तीजे भव निर्वाण होय ही, तातैं शिव का कारण है। अर तीर्थङ्करत्व आदि षोडशकारणतैं ही उपजै है तातैं ह षोडश कारणभावना। मैं तुम्ह नमस्कारकरि थारो स्तवन करूं हूं।

हे भव्यजीवो! इस दुलभ मनुष्य जन्म मे पच्चीस दोषरहित दर्शनविशुद्धता नाम भावना भावहु। सम्यग्दर्शन के नष्ट करने वाले दोषनिकू त्यागना सोही सम्यग्दर्शन की उज्ज्वलता है। तीन मूढता, अष्ट मद, छह अनायतन शंकादि अष्ट दोष ये सत्यार्थ श्रद्धानकू मलीन करन वाले पच्चीस दोष हैं, तिनका दूरह तैं त्याग करो। बहुरि चार प्रकार का विनय जैसे भगवान् का परमागम में कह्या तैसैं दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, उपचारविनय, ये चार प्रकार विनय जिन शासन का मूल भगवान् जिनेंद्र कह्या है। जहा चार प्रकार विनय नाहीं है तहा जिनेन्द्र-धर्म की प्रवृत्ति ही नाहीं। तातैं जिनशासन का मूल विनय रूप ही रहना योग्य है। बहुरि अतीचाररहित शीलकू पालहू। शीलकू मलीन नाहीं करना सो उज्ज्वलशील मोक्ष के मार्ग म बड़ा सहाई है। जाके उज्ज्वल शील है ताके इन्द्रिय विषय कषाय परिग्रहादिक मोक्ष मार्ग में विघ्न नाहीं

कर सके है। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म विषै क्षण-क्षण में ज्ञानोपयोग रूप ही रहो, सम्यग्ज्ञान बिना एक क्षण हू व्यतीत मत करो, अन्य जे सकल्प-विकल्प ससार में डबोवने वाले हैं तिनका दूरहीतैं परित्याग करो। बहुरि धर्मानुराग करि ससार-देह भोगनितैं विरागता रूप संवेग भावना मनके माहीं चिंतवन करते रहो। जातैं समस्तविषयनि म अनुराग का अभाव होय, धर्म में अर धर्म का फल में अनुराग रूप प्रवर्तन दृढ़ होय। बहुरि अतरग में आत्मा के घातक लोभादि के चार कषायनिका अभाव करि अपनी शक्तिप्रमाण सुपात्रनि के रत्नत्रयगुण में अनुराग करि आहारादिक चार प्रकार का दान मे प्रवृत्ति करो। बहुरि दोय प्रकार अतरग बहिरग परिग्रह मे आसक्तता छाडि समस्त विषयनि की इच्छा का अभावकरि अतिशयकरि दुधर तपकू शक्ति प्रमाण अगीकार करो। बहुरि चित्तके विषै रागादिक दोषनिका निराकरण करि परम वीतरागता रूप साधुसमाधि धारण करो। बहुरि ससार के दु ख आपदा का निराकरण करने वाला वैयावृत्य दश प्रकार करहू। बहुरि अरहत के गुणनि म अनुराग रूप भक्तिकू धारण करता अरहत के नामादिक का ध्यान करि अरहत भक्तिकू धारण करो। बहुरि पच प्रकार आचारकू आप आचरण करावे अर दीक्षा शिक्षा दने में निपुण, धर्म क स्तम्भ, ऐसे आचार्य परमेष्ठी क गुणनि में अनुराग

धरना सो आचार्य भक्ति है। बहुरि ज्ञान मे प्रवृत्ति कराने वाले निरन्तर सम्यग्ज्ञान का पठन आप करैं अन्य शिष्यनिकू पढावने मे उद्यमी, चारि अनुयोग-विद्या के पारगामी वा अंग-पूर्वादि श्रुत के धारक उपाध्याय परमेष्ठी की बहुभक्ति धारण करना सो बहुश्रुत भक्ति नाम भावना है।

बहुरि जिनशासन का पुष्ट करने वाला अर संशयादिक अंधकार दूर करने कू सूर्य समान जो भगवान का अनेकान्त रूप आगम ताके पठन में, श्रवण मे, प्रवर्तन में चिंतवन म, भक्ति करि प्रवर्तन करना सो प्रवचन भक्ति भावना भावहू। बहुरि अवश्य करने योग्य षट् आवश्यक हैं ते अशुभ कर्म के आस्रव कू रोकि महान् निर्जरा करने वाले हैं, अशरणनिकू शरण हैं। ऐसे आवश्यकनिकू एकाग्र-चित्तकरि धारहु, इनकी भावना निरन्तर भावहु। बहुरि जिनमार्ग की प्रभावना में नित्य परिवर्तन करो। जिनमार्ग की प्रभावना धन्य पुरुषनिकरि प्रवर्त है। अनेक पुरुषनिकी वीतरागधर्म में प्रवृत्ति अर कुमार्ग का अभाव प्रभावना करके ही होय है। बहुरि धर्म में, धर्मात्मा पुरुषनि म तथा धर्म क आयतन मं, परमागम के अनेकान्त रूप वाक्यनि मे परमप्रीति करना सो वात्सल्य भावना है। यो वात्सल्य अंग है सो समस्त अंगनि मं प्रधान है, दुर्दूर मोह तथा मान का नाश करने वाला है, एसे निर्वाण क सुखकी देने वाली ये षोडशकारण भावनानिकू जो भव्य स्थिरचित्तकरि

भावै है चितन करै है, जाकै आत्मा म रचि जाय है सो समस्त जीवनि का हितरूप तीर्थंकरपनो पाय पचमगति जो निर्वाण ताही प्राप्त होय है। ऐसै षोडशकारण की समुच्चय रूप भावना समाप्त करी।

दर्शनविशुद्धि भावना।

अब दर्शनविशुद्धि नाम प्रथम अगकी भावना वर्णन करिये है-हे भव्यजीवो! जो ये मनुष्य जन्म पाय याहू सुफल किया चाहो हो तो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता करहू। यो सम्यग्दर्शन समस्त धर्मका मूल है। सम्यक्त्व विना श्रावकधर्महू नाहीं होय, मुनिधर्महू नाहीं होय। सम्यग्दर्शन विना ज्ञान है सो कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है, तप है सो कुतप है। सम्यग्दर्शन विना यो जीव अनन्तानन्त काल परिभ्रमण किया है, अब जो चतुर्गति ससारपरिभ्रमणसू भयवान् होकर जन्म जरा मरण तैं छूटया चाहो हो अर अनन्त अविनाशी सुखमय आत्माकू इच्छो हो तो अन्य समस्त परद्रव्यनि में अभिलाषा छाडि सम्यग्दर्शन ही की उज्ज्वलता करहु।

कैसीक है दर्शनविशुद्धता? निर्वाण क सुखकी कारण है, दुर्गति का निराकरण करनेवाली है, विनयसपन्नतादिक पन्द्रहकारणनि का मूल कारण है। दर्शनविशुद्धता नाहीं होय तो अन्य पन्द्रह भावना नाहीं होय हैं। यातैं ससारका दुःख रूप अधकार क नाश करनेकू सूर्य समान है, भव्य

निकट परम शरण है, ऐसी दर्शनविशुद्धिता नाम भावना भावहु। जैसैं स्वपरद्रव्यका भेदज्ञान उज्ज्वल होय तैसैं यत्न करहु। यो जीव अनादिकालतैं मिथ्यात्वनाम कर्म के वशि होय आपका स्वरूपकी अर पर की पहिचान ही नाहीं करी, जैसे पर्यायकर्म के उदयतैं पर्याय पावै तैसी पर्यायकू ही अपना स्वरूप जानता, अपना सत्यार्थरूप का ज्ञान म अन्ध हो, आपके स्वरूप तैं भ्रष्ट हुआ, चतुर्गति में भ्रमण करै है, देव कुदेवकू जानै नाहीं, धर्म कुधर्मकू जानै नाहीं, सुगुरु कुगुरुकू जानै नाहीं। बहुरि पुण्यका पापका, इस लोकका परलोकका, त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य भक्ष्य-अभक्ष्य का, सत्संगका, कुसंगका, शास्त्रका कुशास्त्र का विचार रहित कर्मका उदय के रस में एक रूप भया, अपना हित अहितकू नाहीं पहिचानता, परद्रव्यनि म लालसा रूप होय, सदाकाल क्लेशित होय रहा है। कोऊ अकस्मात् काललब्धि के प्रभावतैं उत्तमकुलादिक म जिनेन्द्रधर्म पाया है। यातैं वीतरागसर्वज्ञका अनेकांत रूप परमागम के प्रसादतैं प्रमाण-नय निक्षेपनितैं निर्णय करि, परीक्षा का प्रधानी होय, वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनि के प्रसादतैं ऐसा निश्चय भया जो एक जानने वाला ज्ञायक रूप अविनाशी, अखंड, चेतनालक्षण, देहादिक समस्त परद्रव्यनितैं भिन्न, मैं आत्मा हूँ, देह जाति कुल रूप नाम इत्यादिक मोतैं अत्यन्त भिन्न हैं, अर राग द्वेष काम क्रोध

मदलोभादिक कर्म के उदयतें उपजे मेरे ज्ञायकस्वभाव में विकार हैं। जैसें स्फटिकमणि तो आप स्वच्छ श्वेत स्वभाव है तिसमें डाक के संसर्गतें काला पीला हरया लाल अनेक रङ्गरूप के दीसै, तैसें मैं आत्मा स्वच्छ ज्ञायक भाव हूँ, निर्विकार टंकोत्कीर्ण हूं, मोहकर्मजनित राग द्वेषादिक यामें झलकें हैं ते मेरे रूप नाहीं, पर हैं। ऐसें तो अपने स्वरूप का निश्चय हुवा।

बहुरि सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक, अर क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष निद्रा स्वेद मद मोह चिंता खेद अरति इन अष्टादश दोषनिका अत्यन्त अभाव जाकै भया अर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुख इत्यादिक अनन्त आत्मीक अविनाशी गुण जाकै प्रगट भए, सो ही आप्त हमारे वंदन स्तवन पूजन करने योग्य हैं। अन्य कामी क्रोधी लोभी मोही स्त्रीनि में आसक्त, शस्त्रादिक ग्रहण किये, कर्म के अधीन इन्द्रिय ज्ञानके धारक, सर्वज्ञतारहित हैं सो मेरे वन्दन स्तवन पूजने योग्य नाहीं। जो चोरनि में शिरोमणि अर जारनि में शिरोमणि है सो कैसें आराधने योग्य होय? बहुरि सर्वज्ञ वीतरागका उपदेश्या अर प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि जामें सर्वथा बाधा नाहीं आवै अर समस्त छहकाय के जीवनिकी हिंसारहित धर्मका उपदेशक, आत्माका उद्धारक, अनेकांतरूप वस्तुकू साक्षात्

प्रगट करने वाला ही आगम है सो पढ़ने पढ़ाने, श्रवण करने श्रद्धान करन वदने योग्य है। अर जे रागी द्वेषीनि करि प्ररूपण किये, अर विषयानुराग अर कषाय के बधावनेवार, जिनमें हिंसाक करनेका उपदेश है ऐसे प्रत्यक्ष अनुमानकरि बाधित, एकांतरूप शास्त्र श्रवण पढ़ने योग्य नाहा, वन्दनायोग्य नाहीं है। बहुरि विषयनिकी वांछाका अर कषायका अर आरम्भपरिग्रहका जाकै अत्यन्त अभाव भया, केवल आत्मा की उज्ज्वलता करने मे उद्यमी, ध्यान स्वाध्याय म अत्यन्त लीन, स्वाधीन, कम बधजनित दु ख सुखमें साम्यभावक धारक, जीवन मरण, लाभ अलाभ, स्तवन निंदने मे रागद्वेषरहित, उपसर्गपरीषहनिके सहने में अकम्प धैर्यक धारक, परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु ही वदन स्तवन करने योग्य है। अन्य आरम्भी कषायी विषयानुरागी कुगुरु कदाचित् स्तवन वन्दन करने योग्य नाहीं। बहुरि जीवदया ही धर्म है। हिंसा कदाचित् धर्म नाहीं। जो कदाचित् सूर्य का उदय पश्चिमदिशा में होजाय, अर अग्नि शीतल होजाय, अर सर्पका मुखमें अमृत होजाय, अर मेरु चलि जाय अर पृथ्वी उलट पलट होजाय तो हू हिंसाम तो धर्म कदाचित् नाहीं होय। एसा दृढ सिद्धान्त सम्यग्दृष्टिक होय है। जाकै अपने आ माक अनुभवम अर सर्वज्ञ वीतरागरूप आप्तके स्वरूप म अर निग्रन्थ विषयकषायरहित गुरुमें अर अनेकान्तस्वरूप आगममें अर दयारूप धमर्म शङ्का

का अभाव सो निःशंकित अंग है। सम्यग्दृष्टि पाम कदाचित् शङ्का नाहीं करै है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि है सो धर्मसेवनकरि विषयनिकी वांछा नाहीं करै है, जातैं सम्यग्दृष्टिकै इन्द्र अहमिन्द्रलोक के विषै हू महान वेदनारूप विनाशीक पापका बीज दीसै है, अर धर्मका फल अनन्त अविनाशी स्वाधीन सुखकरि युक्त मोक्ष दीसै है। तातैं जैसें बहुमूल्य रत्न छांडि काचखण्डकू जौहरी नाहीं ग्रहण करै है तैसें जाकू सांचा आत्मीक अविनाशी बाधारहित सुख दीसै सो झूठा बाधासहित विषयनिका सुखमें कैसें वांछा करै? तातैं सम्यग्दृष्टि वांछारहित ही होय है। अर जो अव्रती सम्यग्दृष्टीकै वर्तमानकालमें आजीविकादिनिमें तथा स्थानादिकपरिग्रहमें वांछाके अभाव में जो वांछा होय है सो वर्तमानकाल की वेदना सहने की असामर्थ्यतैं वेदनाका इलाजमात्र चाहै है। जैसे रोगी कडवी औषधितैं अति विरक्त होय है तो हू वेदनाका दुःख नाहीं सह्या जाय, तातैं कड़वी औषधि वमन विरेचनादिक का कारणहू ग्रहण करै है, दुर्गन्ध तैलादिकहू लगावै है, अन्तरङ्गमें औषधितैं अनुराग नाहीं है, तैसें सम्यग्दृष्टि निर्वांछक है तो हू वर्तमानकै दुःख मेटनेकू योग्य न्यायकै विषयनिकी वांछा करै है। अर नियम प्रत्याख्यानअप्रत्याख्यानावरणकषायका अभाव भया ते अंशनां सो खंड होय तो हू विषयवांछा नाहीं करै है। यातैं सम्यग्दृष्टिकै

नि काक्षित गुण होय ही है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अशुभ कर्मक उदयतैं प्राप्त भई अशुभ सामग्री तिसमें ग्लानि नाहीं करै, परिणाम नाहीं बिगाडै है, मैं पूर्व जैसा कर्म बांध्या तैसा भोजन, पान, स्त्री पुत्र दरिद्र सपदा आपदाकू प्राप्त भया हूँ तथा अन्य किसीकू रोगी दरिद्री हीन नीच मलीन देखि परिणाम नाहीं बिगाडै है, पापकी सामग्री जानि कलुषता नाहीं करै है, तथा मलमूत्र कर्दमादि द्रव्यकू देखि अर भयङ्कर स्मशान बनादि क्षेत्रकू देखि, भयरूप दु खदायी कालकू देखि, दुष्टपना कडवापना इत्यादिक वस्तुका स्वभावकू देखि अपना निर्विचिकित्सित अग सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

बहुरि खोटे शास्त्रनितैं तथा व्यन्तरादिक देवनिकृत विक्रियातैं तथा मणि मन्त्र औषधादिकनिक प्रभावतैं अनेक वस्तुनिके विपरीत स्वभाव देखि सत्यार्थ धर्मतैं चलायमान नाहीं होना सो सम्यग्दर्शनका अमूढदृष्टि गुण है, सो सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अन्य जीवनिके अज्ञानतैं अशक्ततातैं लगे हुए दोष देखि आच्छादन करै है। ये ससारी जीव ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मक वशि होय अपना स्वभाव भूल रहे हैं, कर्मक आधीन असत्य परधनहरण कुशीलादि पापनि मे प्रवृत्त करै हैं। जे पापनितैं दूर वर्तै हैं ते धन्य है। बहुरि काऊ धर्मात्मा पुरुष (नामी पुरुष)

पापक उदयतैं चूकि जाय ताकू देखि ऐसा विचारै,-जो यो दोष प्रगट होसी तो अन्य धर्मात्मा अर जिनधर्म की बड़ी निन्दा होसी, या जानि दोष अच्छादन करै, अर अपना गुण होय ताका प्रशंसा का इच्छुक नाहीं होय है सो यो उपगूहनगुण सम्यक्त्वको है। इन गुणनितैं पवित्र उज्ज्वल दर्शन विशुद्धितानाम भावना होय है।

बहुरि जो धर्मसहित पुरुषका परिणाम कदाचित् रोग का वेदना करि धर्मतैं चलि जाय तथा दारिद्र करि चलि जाय तथा उपसर्ग परिषहनिकरि चलि जाय तथा असहा यताकरि तथा अहारपानका निरोधकरि परिणाम धर्मतैं शिथिल होजाय ताकू उपदेशकरि धर्म म स्थम्भन करै। भो ज्ञानी! भो धर्मके धारक! तुम सचेत होहू, कैसे कायरता धारणकरि धर्म में शिथिल भये हो, जो रोगकी वेदनातैं धर्मतैं चिगो हो, कैसे भूलो हो, यो असातावदनीकर्म अपना अवसर पाय उदयम आय गया है अब जो कायर होय दीनताकरि रुदनविलापादि करते भोगोगे तो कर्म नाहीं छाडेगा। कर्मके दया नाहीं होय है। और धीरपनातैं भोगोगे तो कर्म नाहीं छाडगा, कोऊ देव दानव मन्त्र तन्त्र औषधादिक तथा स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव सेवक सुभटादिक उदयमें आया कर्म हरनेकू समर्थ है नाहीं, यो तुम अच्छी तरह समझो हो। अब इस वेदना में कायर होय अपना धर्म अर यश अर परलोक इनकू कैसे बिगाडो हो।

अर इनकू बिगाडि स्वछन्द चेष्टा विलापादि करनतैं वेदना नाहीं घटै है। ज्यों ज्यों कायर होवेगा त्यों त्यों वेदना दु ख बढैगा। तातैं अब साहस धारण करि परम धर्मका शरण ग्रहण करो। ससारमें नरकके तथा तिर्यञ्चनि के क्षुधा तृषा रोग सन्ताप ताडन मारन शीत उष्णादिक घोर दु ख असख्यातकाल पर्यन्त अनेक बार अनन्तभव धारण करि भोगे। ये तुम्हार कहा दु ख है, अल्प कालमें निजरैगा। अर रोग वेदना देहकू मारैगा, तुम्हारा चेतनस्वरूप आत्माकू नाहीं मारैगा। अर देहका मरना अवश्य होयगा, जो देह धारण किया ताकै अवश्यंभावी मरण है। सो अब सचेत होहू यो कर्म का जीतवाको अवसर है। अब भगवान् पच परमेष्ठी का शरण ग्रहणकरि अपना अजर अमर अखड ज्ञाता दृष्टा स्वरूप का ग्रहण करो। ऐसा अवसर फेरि मिलना दुर्लभ है। इत्यादिक धर्मका उपदेश देय धर्म में दृढ करना अर अनित्य अशरणादि भावना का ग्रहण शीघ्र करावना, त्याग व्रतादिक छाडि दिये होय तो फिर करावना तथा शरीरका मर्दनादिक करि दु ख दूरि करना अर कोऊ टहल करनेवाला नाहीं होय तो आप टहल करना, अन्य साधर्मीनिका मेल मिला दना, आहार पान औषधादिकरि स्थितिकरण करना तथा मलमूत्र कफादिक होय तो धोवना पूछना इत्यादि करि स्थिर करना, दारिद्रकरि चलायमान होय तिनका भोजन-

पानादिक करि, आजीविकादिक लगाय देने करि, उपसर्ग परीषहादिक दूर करने करि सत्यार्थ धर्म में स्थापन करना सो स्थितिकरण अंग सम्यग्दृष्टि के होय है।

बहुरि वात्सल्यनामगुण सम्यग्दृष्टिके होय है। संसारी जीवनिकी प्रीति तो अपने स्त्रीपुत्रादिकनिमें तथा इन्द्रियनि के विषयभोगनि में, धनके उपार्जनमें बहुत रहे है। जातैं स्त्रीपुत्रधन परिग्रह विषयादिकनिकू संसारपरिभ्रमण के कारण जानि, अंतरंगमें विरागता धारण करि, जाकी धर्मात्मामें, रत्नत्रयके धारक मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकामें वा धर्मके आयतननिमें अत्यन्त प्रीति होय, ताकै सम्यग्दर्शन का वात्सल्यअंग होय है।

बहुरि जो अपने मनकरि वचनकरि कायकरि धनकरि दानकरि व्रतकरि तपकरि भक्तिकरि रत्नत्रय का भाव प्रकट करै सो मार्ग प्रभावना अङ्ग है। याका विशेष प्रभावना अङ्ग की भावना में वर्णन करियेगा। ऐसैं सम्यग्दर्शन के अष्टअङ्ग धारण करनेतैं इन गुणनिका प्रतिपक्षी शंका काङ्क्षादिक दोषनिका अभावकरि दर्शनविशुद्धता होय है। बहुरि लोकमूढता देवमूढता गुरुमूढताका परिणामनिकू छांडि श्रद्धानकू उज्ज्वल करना।

अब लोकमूढताका स्वरूप ऐसा है'—जोमृतकनिका हाड नखादि गंगामें पहुचाने में मुक्ति भई मानै है तथा 'गंगाजलकू उत्तम मानना, तथा गंगास्नानमें, अन्य नदिके

स्नान में, नदी की लहर लेने धर्म म मानना तथा मृतक भर्ताके साथ जीवती स्त्री तथा दासी अग्निमें दग्ध होजाय ताकू सती मानि पूजना, मरयाकू पितर मानि पूजना, पितरनिकू पातडी में स्थापन करि पहराना तथ सूयचन्द्र मगलादिक ग्रहनिकू सुवर्ण रूपाका बनाय गलेमें पहराना तथा ग्रहनिका दोष दूर करनेकू दान देना, सक्रांति व्यति पात सोमोती अमावसि मानि दान करना, सूय चन्द्रमाका ग्रहणका निमित्ततें स्नान करना, डाबकू शुद्ध मानना, हस्तीके दतनिकू शुद्ध मानना, क्रया पूजन, सूर्य चन्द्रमा कू अघ देना, देहली पूजना, मूशलकू पूजना, छींकू पूजना, दीपककी जोतिकू पूजना, देवता की बोलारी बोलना, जडला चोटी रखना, देवता की मेर के करारतें अपना सन्तानादिककू जीवित मानना, सन्तानकू देवता का दिया मानना तथा अपने लाभ वास्ते तथा कार्यसिद्धि वास्ते एसी बीनती करै-जो मेरे ऐता लाभ होजाय तथा सन्तान का रोग मिटिजाय तथा सन्तान होजाय,या वैरीका नाश होजाय तो मैं आपके छत्र चढाऊँ, इतना धन भेट करू, ऐसा करार करै है, देवताकू सौंक (रिश्वत) देय कार्यकी सिद्धि के वास्त वाछै है । तथा रातजगा करना, कुलदेवकू पूजना, शीतलाकू पूजना, लक्ष्मीकू पूजना, सोना रूपाकू पूजना, पशुनिकू पूजना, अन्नकू जलकू पूजना, शस्त्रकू वृक्षकू पूजना, अग्निदेव मानि पूजना सो लोकमूढता

है मिथ्यादर्शन का प्रभावतैं श्रद्धान के विपरीतपना है सो त्यागने योग्य है।

बहुरि देव कुदेव का विचाररहित होय कामी क्रोधी परिग्रहीहू में ईश्वरपना की बुद्धि करना, जो यह भगवान् परमेश्वर हैं, समस्त रचना याकी है, ये ही कर्त्ता हैं, हर्त्ता हैं, जो कुछ होय है सो ईश्वर को कियो है, समस्त आछी बुरी लोकनिसू ईश्वर करावै है, ईश्वर का किया बिना कछू ही नाहीं होय है, सब ईश्वर की इच्छाके आधीन है, शुभकर्म अशुभकर्म ईश्वर की प्रेरणा बिना नाहीं होय है, इत्यादिक परिणाम सम्यग्दर्शन के अभावकरि होय सो देवमूढता है।

बहुरि पाखण्डी हीन-आचार धारक तथा परिग्रही, लोभी, विषयनिका लोलुपीनिसू करामाती मानना, वाका वचन सिद्ध मानना तथा ये प्रसन्न हो जांय तो हमारा वांछित सिद्ध हो जाय, ये तपस्वी हैं, पूज्य हैं, महापुरुष हैं, पुराण हैं इत्यादिक विपरीत श्रद्धान करै सो गुरुमूढता है। तातैं जिनके परिणामनितैं इन तीन मूढताका लेशमात्रहू नाहीं होय ताकैं दर्शनकी विशुद्धता होय है। बहुरि छह अनायतनका त्यागकरि दर्शनविशुद्धता होय है। कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनके सेवन करने वाले ये धर्म के आयतन कहिये स्थान नाहीं। तातैं ये अनायतन हैं।

भावार्थ-जो रागी द्वेषी कामी क्रोधी परिग्रही-

मिथ्यात्वकरि सहित है तिनम सम्यक् धर्म नाहीं पाईय। तातैं कुदेव हैं ते अनायतन है। बहुरि पचइन्द्रियनि के विषयनिक लोलुपी, परिग्रह के धारी, आरम्भ करनेवाले ऐसे भेषधारी ते गुरु नाहीं, धर्महीन हैं। तातैं अनायतन हैं। बहुरि हिंसा के आरम्भ की प्रेरणा करनेवाला, राग द्वेषकामादिक दोषनिका बधावनेवाला, सर्वथा एकान्तके प्ररूपक शास्त्र हैं ते कुशास्त्र धर्मरहित हैं। तातैं अनायतन हैं। बहुरि देवी दिहाडी क्षेत्रपालादिक दक्षकू वदने वाले अनायतन हैं। बहुरि कुगुरुनिके सेवक हैं भक्तितैं धर्मतैं रहित हैं ते अनायतन हैं। बहुरि मिथ्याशास्त्रके पढ़नेवाले अर इनकी सेवा भक्ति करनेवाले एकांती धर्मका स्थान नाहीं तातैं अनायतन हैं। ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इन की सेवा भक्ति करनेवाले इन छहूनिम सम्यक्धर्म नाहीं है। ऐसा दृढ़ श्रद्धानकरि दर्शनविशुद्धता होय है।

—बहुरि जातिमद, कुलमद, ऐश्वर्यमद, शासनका मद, तप का मद, बल का मद, विज्ञानमद इन अष्ट मदनि का जाकै अत्यन्त अभाव होय है ताकै दर्शन विशुद्धता होय। सम्यग्दृष्टि के सांचा विचार ऐसा है—हे आत्मन्! या उच्च जाति है सो तुम्हारा स्वभाव नाहीं, यह तो कर्म का परिणमन है, परकृत है—विनाशीक है, कर्मनि के आधीन है। संसार म अनेक बार अनेक जाति पाई हैं। माता की पक्षकू जाति कहिय है। जैसे अनेक बार चाडाली के

तथा भीलणी क म्लेच्छणी के चमारी क धोबिनी क नायणि के डूमणि के नटनि के वेश्या के दासी के कलाली के धीवरी इत्यादि मनुष्यनि के गर्भ में उपज्या है, तथा सूअरी कूकरी गर्दभी स्यालणी कागली इत्यादिक तिर्यंचनि के गर्भ में अनतवार उपनि उपनि मरया है। अनन्तवार नीच जाति पावै तब एक बार उच्चजाति पावै। ऐसे उच्च जाति भी अनन्तवार पाई तोहू संसार परिभ्रमण ही कीया। अर ऐसे ही पिता की पक्षका कुलहू ऊँचा नीचा अनन्तवार प्राप्त भया। संसारमे जातिका, कुलका मद कैसै करिये है? स्वर्गका महद्धिकदेव मरिकरि एकेन्द्रिय आय उपजै है तथा स्वानादिक निन्द्य तिर्यंचनिमें उपजै है तथा उत्तमकुलका धारक होय सो चाडाल में जाय उपजै। तातैं जातिकुल म अहंकार करना मिथ्यादर्शन है। हे आत्मन्! तुम्हारा जातिकुल तो सिद्धनिके समान है। तुम आपा भूलि माताका रुधिर पिताका वीर्यतैं उपजे जातिकुल में मिथ्या आपा धरि फेर हू अनन्तकाल निगोदवास मति करो। वीतरागका उपदेश ग्रहण किया है तो इस देह की जातिहू हू संयम शील दया सत्यवचनादिकरि सफल करो। जो मैं उत्तम जातिकुल पाय नीचकर्मीनिकेसे हिंसा असत्य परधनहरण कुशीलसेवन अभक्ष्य भक्षणादि अयोग्य आचरण कैसे करू? नाहीं करू। ऐसा अहंकार करना योग्य है। सम्यग्दृष्टिके कर्मकृत पुद्गलपर्यायमें

कदाचित् आत्मबुद्धि नाहीं होय है।

बहुरि ऐश्वर्य पाय ताका मद कैसे करिये। यो ऐश्व तौ आपा भुलाय बहु आरम्भ रागद्वेषादिकमें प्रवृत्तिकरा चतुर्गतिमें परिभ्रमण का कारण है। निर्ग्रन्थपना तीन लो में ध्यावने योग्य है, पूज्य है। अर यो ऐश्वर्य क्षणभँगु है, बड़े २ इन्द्र अहमिंद्रनिका पतनसहित है। बलभ नारायणनिका ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट हो गया, अ जीवनिका ऐश्वर्य कताक है? एसैं जानि, ऐश्वर्य दोय दि पाया है तो दुःखित जीवनिका उपकार करो, विनयता होय दान देहु। परमात्मस्वरूप अपना ऐश्वर्य जानि इ कर्मकृत ऐश्वर्य में विरक्त होना योग्य है। बहुरि रूपव मद मति करो। यो विनाशीक पुद्गलको रूप आत्माका स्वरूप नाहीं, विनाशीक है, क्षण क्षणमें नष्ट होय है। इस रूपहू रोग वियोग दरिद्र जरा महाकुरूप करैगा। ऐसा हाडचामका रूपमें रागी होय मद करना बड़ा अनर्थ है। इस आत्मा का रूप तो केवलज्ञान है जिसमें लोक अलोक सब प्रतिबिंबित होय है। तातैं चामडा का रूप में आपा छाडि, अपना अविनाशी ज्ञानस्वरूपमें आपा धारहु। बहुरि श्रुतका गर्वकू छोडहु। आत्मज्ञानरहितका श्रुत निष्फल है, जातैं एकादश अंगका ज्ञान सहित होय करकेहू अभव्य संसारही में परिभ्रमण करै है। सम्यग्दर्शन बिना अनेक व्याकरण छंद अलंकार काव्य कोषादिक पढना, विपरीत

धर्ममें अभिमान लोभमें प्रवर्तन कराय संसाररूप अंधकूप में डुबोवने के अधिज्ञानहू। और इस इन्द्रियजनित ज्ञान का कहा गर्व है? एक क्षण में वातपित्त कफादिक के घटने बधने तैं चलायमान होजाय है। अर इन्द्रियजनित ज्ञान तो इन्द्रियनिका विनाशकी साथ ही विनशैगा अर मिथ्याज्ञान तो ज्यों बधैगा त्यों खोटे काव्य खोटी टीकादिकनि की रचनामें प्रवर्तन कराय अनेक जीवनिकू दुराचार में प्रवर्तन कराय डबोय देगा। तातैं श्रुतका मद छांडहू, ज्ञान पाय आत्मविशुद्धता करहू, ज्ञान पाय अज्ञानीकसे आचरणकरि संसारमें भ्रमण करना योग्य नाहीं।

बहुरि सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि का तप निष्फल है। तपको मद करो हो-जो मैं बड़ा तपस्वी हू सोमदके प्रभावतैं बुद्धि नष्ट करिकैं यो तप दुर्गति में परिभ्रमण करावेगा। तातैं तपका गर्व करना महा अनर्थ जानि भव्यनिकू तपका गर्व करना योग्य नाहीं है। बहुरि जिस बलकरि कर्मरूप वैरीकू जीतिये तथा काम क्रोध लोभकू जीतिये, सो बल तो प्रशंसा योग्य है और देहका बल, यौवन का बल, ऐश्वर्यका बल पाय अन्य निर्बल अनाथ जीवनिकू मारि लेना, धन खोसि लेना, जमीं नीविका खोसि लेना, कुशीलसेवन करना दुराचार में प्रवर्तन करावना सो बल तो नरक क घोर दुःख असंख्यातकाल भोगाय, तिर्यंचगति में मारण ताडन लादनकरि तथा दुर्वचन तथा क्षुधा तृषादिकनिके दुःख अनेक पर्यायनिमें भुगताय, एकेन्द्रि

यनिमें समस्तबलरहित असमर्थ करैगा। तातैं बलका मद छाडि क्षमा ग्रहण करि उत्तमतपम प्रवर्तन करना योग्य है।

बहुरि जो विज्ञान कहिये अनेक हस्तकला, अनेक वचन कला अनेक मनके विकल्प जिनकरि यो आत्मा चतुर्गति रूप संसार मे परिभ्रमणकरि दुःख भोगै है, तो समस्त कुज्ञान हैं। इस संसार में खोटीकला चतुरताका बड़ा गर्व है। जो हमारा सामर्थ्य ऐसा है तो साचेकू झूठ कर देवैं, झूठेकू साँचा कर देवैं, कलंकरहितकू कलंकसहित करि देवैं, शीलवन्तकू दूषित करिदेवैं, अदण्डनिकू दण्ड देने योग्य करि देवैं, बहुत दिननिका संचय किया द्रव्यकू कढ़ा लेवैं तथा धर्म छुडाय अन्यथा श्रद्धान कराय देवैं तथा प्राणीनिके वशीकरण तथा अनेक जीवनिका मारण तथा अनेक जलमें गमन करनेके, स्थलमें गमन करनेके, आकाश मे गमन करनेके, अनेक यन्त्र बनाय देवैं, इत्यादिक कलाचातुर्य हैं ते सब कुज्ञान हैं। याका गर्व नरकके घोर दुःखका कारण है। कलाचातुर्य तो सम्यक्त्व सो है। जातैं अपना आत्माकू विषयकषायके उलझावतैं सुलझावना तथा लोकनिकू हिंसारहित सत्यमार्गमें प्रवर्ताना है, ऐसे सत्यार्थवस्तुका स्वरूप समझि, जाति, कुल, धन ऐश्वर्य, रूप, विज्ञानादिककू कर्मके अधीन जानि इनका मद छाडि दर्शनविशुद्धता करो। ऐसे तीन मूढ़ता, अर आठ शङ्कादिकदोष, अर षट् अनायतन, अर अष्ट मद ऐसे

पच्चीस दोषका परिहार करि सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय है। ऐसे जानि दर्शनविशुद्ध भावना ही निरन्तर करै अर याहीकू ध्यानगोचर करि स्तुति सहित उज्ज्वल अर्घ उतारण करैं हैं सो मुक्तिस्त्रीकू सम्बन्ध करै है। ऐसे दर्शन-विशुद्धता नाम प्रथम भावना वर्णन करी ॥१॥

(२) विनयसंपन्नता भावना

अब आगैं विनयसंपन्नता नाम दूजी भावना कहिये है। सो विनय पंच प्रकार कह्या है—दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचारविनय। तहां जो अपने श्रद्धान कै शङ्कादिक दोष नाहीं लगावना तथा सम्यग्दर्शन की विशुद्धताकरि ही अपना जन्म सफल मानना, सम्यग्द-र्शनके धारकनिमें प्रीति धारना, आत्मा अर परका भेद विज्ञान का अनुभव करना सो दर्शनविनय है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके आराधनमें उद्यम करना, सम्यग्ज्ञानकी कथनी में आदर करना तथा सम्यग्ज्ञान के कारण जे अनेकांत रूप जिनसूत्र तिनके श्रवण पठनमें बहुत उत्साहरूप होना तथा वन्दना स्तवनपूर्वक बहुत आदरतैं पढ़ना सो ज्ञानविनय है। तथा ज्ञानके आराधक ज्ञानीजनों का तथा जिनागमके पुस्तकनि का संयोग का बड़ा लाभ मानना, सत्कार स्तवन आदरादिक करना सो ज्ञान विनय है। बहुरि अपनी शक्तिप्रमाण चारित्र धारणमें हर्ष करना, दिनदिन चारित्र

की उज्ज्वलता के अर्थि विषयकषायनिकू घटावना तथा चारित्रके धारकनिके गुणनिमें अनुराग स्तवन आदर करना सो चारित्र विनय है। बहुरि इच्छाकू रोकि मिले हुए विषयनिमे संतोष धारणकरि ध्यानस्वाध्यायमे उद्यमी होय, काम के जीतनेकू अर इन्द्रियनि के विषयनि मे प्रवृत्ति रोकनेकू अनशनादिक तपमें उद्यम करना सो तपविनय है। बहुरि इन च्यारि आराधनाका उपदेशकरि मोक्षमार्गमें प्रवर्तन करावनेवाले तथा जिनके स्मरण करनेतैं परिणामनिका मल दूरि होय, विशुद्धता प्रगट हो जाय ऐसे पंच परमेष्ठी के नाम की स्थापना का विनय वंदना स्तवन करना सो उपचारविनय है। अन्य हू उपचारविनयका बहुत भेद है।

अभिमानकू छांडि अष्टमदका अत्यन्त अभाव जाकै होय, कठोरता छूटि कोमलता जाकैं प्रगट होय ताकै नम्रपना प्रगट होय है। ताकै सत्यार्थ ऐसा विचार है-यो धन यौवन जीवन क्षणभंगुर है, कर्मके अधीन है, कोऊ जीव हमतैं क्लेशित मत होहू, सकल सम्बन्ध वियोगसहित हैं, इहां केते काल रहूगा, समय समय कालके सन्मुख अखंड गमन करू हूँ, कोऊ वस्तुका सम्बन्ध थिर नाहीं है, इहा विनय धर्म ही भगवान् मनुष्य जन्मका सार कह्या है, यो विनय संसाररूप वृक्षके दग्ध करनेकू अग्नि है, यो विनय है सो त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके मनकी उज्ज्वलता करने वाला

है, अर विनय है सो समस्त जिनशासनको मूल है, विनयरहितके जिनेन्द्रकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है। विनयरहित जीव समस्त दोषनिका पात्र है, विनय है सो मिथ्याश्रद्धानके छेदनेहू बल है, विनय बिना मनुष्यरूप चामड़ाको वृक्ष मानरूप अग्नि करि भस्म होय है। अर मानकषाय करिके यहां ही घोर दुःख सहै है अर परलोक में निंद्य जाति, कुलरूपबुद्धिहीन बलहीन उपजै है। जे अभिमानी यहां किंचित् वचनमात्र हू नाहीं सहै हैं ते तिर्यंचगतिमें नासिकामें मूंजका जेवड़ाका बन्धन, लादन, मारण, लात ठोकरांका घात, चामटाका मरमस्थानमें घात, पराधीन हुआ भोगै है, तथा चाडालनिके मलीन घरमें बन्धनतैं बन्ध रहै हैं जिन उपरि मलादि निंद्य वस्तु लादिये है। और इसलोकमें हू अभिमानीके समस्त लोक वैरी हो जाय हैं। अभिमानीहू समस्त निंदै है, महाअपयश प्रगट हो जाय है। समस्त लोग अभिमानीका पतन चाहै हैं। मानकषायतैं क्रोध प्रगट होय कपट विस्तारै, अतिलोभ करै दुर्वचननिमें प्रवर्तन करै है। लोकमें जेती अनीति है तितनी मानकषायतैं होय है। पर धन-हरणादिक हू अपन अभिमान पुष्ट करनेहू करै है। यातैं इस जीवका बड़ा वैरी मानकषाय है। यातैं विनय गुणमें महान् आदरकरि अपना दोऊ लोक उज्ज्वल करो। सो विनय देवको, शास्त्रको, गुरुनिको मन वचन कायतैं प्रत्यक्ष

अर परोक्ष दूर करो।

तहां देव जो भगवान अरहंत समवसरण विभूति सहित गंधकूटीके मध्य सिंहासन, उपरि अंतरिक्ष विराजमान, चौसठ चमरनिकरि वाज्यमान, छत्रत्रयादिक प्रातिहार्यनिकरि विभूषित, कोटिसूर्यसमान उद्योतका धारक, परमौदारिक दर्शन विष्टा, द्वादश सभाकरि सेवित, दिव्यध्वनिकरि अनेक जीवनिका उपकार करनेवाले अरहंतको चितवनकरि ध्यान करना सो मनकरि परोक्षविनय है। याका विनयपूर्वक स्तवन करना सो वचन करि परोक्ष विनय है। अंजुली जोडि मस्तक चढ़ाय नमस्कार करना सो कायकरि परोक्षविनय है। बहुरि जो जिनेन्द्र की प्रतिबिम्बकी परमशान्त मुद्राकूं प्रत्यक्ष नेत्रनितैं अवलोकनिकरि महा आनन्दतैं मनमें ध्यायकरि आपकूं कृतकृत्य मानना सो मनकरि प्रत्यक्षविनय है। जिनेन्द्र का प्रतिबिंबके सन्मुख होय स्तवन करना सो प्रत्यक्ष वचनविनय है। अंजली मस्तक चढ़ाय वन्दना करना तथा भूमिमें अंजली सहित मस्तक गोडानिका स्पर्शनकरि नमस्कार करना सो कायकरि प्रत्यक्षविनय है। तथा सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा जिनेन्द्रका नामका स्मरण, ध्यान, वन्दना, स्तवन करना सो समस्त परोक्षविनय है। ऐसे देवका विनय समस्त अशुभकर्मनिका नाश करनेवाला कहा है।

बहुरि जो निर्ग्रंथ वीतरागी मुनीश्वरनिकूं प्रत्यक्ष

देखि खड़ा होना, [illegible] करना, वंदना करना, गुरु [illegible] कदाचित् बराबर चलना [illegible] चलना, गुरुनिकू आगे [illegible] बैठना, गुरुनिकू विषमाद [illegible] कोऊ प्रश्न करै तो गुरुनिकू [illegible] अर गुरुनिकी इच्छा [illegible] उत्तर देना, गुरुनिक [illegible] गुरु व्याख्यान उपदेश [illegible] बहुत आदरतैं ग्रहण करना [illegible] करि आज्ञाके अनुकूल [illegible] होय तो बाकी जो आज्ञा [illegible] गुरुनिका ध्यान स्तवन [illegible] गुरुनिका विनय है। [illegible]

बहुरि शास्त्रका विनय [illegible] श्रवण करना, द्रव्य क्षेत्र [illegible] पढ़न करना, शास्त्र का कथा [illegible] सकै तो आगा का उल्लंघ [illegible] होय तिस प्रमाण ही [illegible] ताकू एकाग्रचित्तैं श्रवण [illegible] आदरपूर्वक मौनतैं श्रवण [illegible] संशय दूर करनेका विनय [illegible]

सभाके अर लोकनिकै अर वक्ताकै क्षोभ नाहीं उपजै तैसे विनयपूर्वक प्रश्न करना, उत्तरकू आदरतैं अंगीकार करना सो शास्त्रका विनय है। तथा शास्त्रकू उच्चआसनपर धरि नीचा बैठना, प्रशंसा स्तवन करना इत्यादिक शास्त्रका विनय करना। ऐसे देव गुरु शास्त्रका विनय है सो धर्मका मूल है।

बहुरि जो रागद्वेषकरि आत्माका घात जैसे नाहीं होय तैसे प्रवर्त्तन करना सो आत्माका विनय है। जातैं ऐसा विचारैं हैं—अब यो मेरो जीव चतुर्गतिमें मति परिभ्रमण करो, अब मेरा आत्मा मिथ्यात्व कषाय अविनयादिकरि संसार परिभ्रमणके दुःख मति प्राप्त होहू। ऐसे चिंतवन करता मिथ्यात्व कषाय अविनयादिकरि आत्माका ज्ञानादिक गुण घात नाहीं करना सो आत्माका विनय है। याहीकू निश्चय विनय कहिये है। यह तो परमार्थ विनय कह्या।

अब यहां ऐसा विशेष जानना। जाके मान कषाय घटि जाय ताहीकू व्यवहारविनय है। कोऊ जीवका मोतैं अपमान मति होहू। जो अन्यका सन्मान करैगा सो आपहू सन्मानकू प्राप्त होयगा। जो अन्यका अपमान करैगा सोआपहू अपमानकू प्राप्त होय है। जो समस्तकू मिष्टवचन बोलना सो विनय है। किसी जीवकू तिरस्कार नाहीं करना सोहू विनय ही है। अपने घर आया ताका

यथायोग्य सत्कार करना, किसीकू सन्मुख जाय न्यावना, किसीकू उठि खडा होना, एक हस्तकू माथै चढावना, किसीकू आइए ३ इत्यादिक तीन बार कहि अंगीकार करना, कोऊकू आदरकरि नजीक बैठावना, किसीकू आसन दान दना, किसीको आवो बैठो कहना, किसीक शरीरकी कुशलता पूछना तथा हम आपक हैं, हमकू आज्ञाकरिये, भोजनपान करिए यह आपही का गृह है, ये गृह आपक आवनेतैं उच्च भया है, आपकी कृपा हमार पर सनावननैं है, एसे व्यवहार विनय है। तथा कोऊकू हस्त उठाय [illegible] चढावना एता ही विनय है। और हू दान सन्मान [illegible] पूछना, रोगी दु खीका वैयावृत्य करना सो भी [illegible] ही के होय है। दु खित मनुष्य तिर्यंचनिकू [illegible] दना, दु ख श्रवण करना, अपना [illegible] उपकार करना नहीं बननेका होय तो [illegible] का उपदेश दना एसे व्यवहारविनय है। [illegible] विनयका कारण है, यशकू उपजावै है, धर्म की प्रभावना करै है।

मिथ्यादृष्टिका हू अपमान नाहीं करना, मिष्टवचन बोलना, यथा योग्य आदर सत्कार करना, सोई विनय है। महापापी द्रोही दुराचारीकू हू दुर्वचन नाहीं कहना, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियादिक तथा [illegible] जीव [illegible] विराधना नहीं करना, याकी रक्षा का [illegible] सोई

का विनय है। अन्यधर्मीनिका मंदिर प्रतिमादिकतैं वैर करि निंदा नाहीं करना। ऐसा परमार्थ व्यवहार दोय प्रकार का विनयको धारणकरि गृहस्थकू प्रवर्तन करना योग्य है। देखो सकल संगका परित्यागी वीतरागी मुनीश्वरकू कोऊ मिथ्यादृष्टि वन्दना करै है ताकू आशीर्वाद देवै है, चांडाल भील धीवरादिक अधमजाति हू वन्दना करै ताकू पापक्षयोस्तु इत्यादिक आशीर्वाद दे है। तात विनयअंग धारण करो हो तो बाल अज्ञान धर्मरहित का तथा नीच अधम जाति होय ताका हू विनय नाहीं करो तो हू तिरस्कार निंदा कदाचित् करना उचित नाहीं है। इस मनुष्य जन्मका मण्डन विनय ही है। विनय विना मनुष्यजन्मकी एक घड़ी भी हमारे मति जावो, ऐसे भगवान् गणधरदेव कहै हैं। ऐसी विनयगुणकी महिमा जानि याका महान अर्थ उतारण करो। हे विनयसंपन्नता अंग हमारे हृदयमें तू ही निरन्तर वास करि, तेरे प्रसादतैं अब मेरा आत्मा कदाचित् अष्टमदनिकरि अभिमानकू प्राप्त होहू। ऐसे विनयसंपन्नता नाम अङ्गकी दूजी भावना वर्णन करी ॥२॥

३ शीलव्रतेष्वनतिचार भावना

अब तीसरी शीलव्रतेष्वनतीचार भावना कहै हैं—
शीलव्रतेष्वनतीचारका ऐसा अर्थ राजवार्तिकमें कह्या—

अहिंसादिक पंचव्रत अर इन व्रतनिका पालन के अर्थि क्रोधादिककषायका वर्जनादि रूप शीलविषै जो मनवचनकाय की निर्दोषप्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना है। शीलनाम आत्मा का स्वभावका है। आत्मस्वभाव का नाश करनेवाला हिंसादिक पांच पाप हैं, तिनमें कामसेवन नाम एक ही पाप हिंसादिक समस्तपापनिकू पुष्ट करै है, अर क्रोधादिककषायनिकी तीव्रता करै है। तातैं यहाँ जयमाला में ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानताकरि वर्णन करिये है। यो शील दुर्गतिके दुःख का हरनहारा है, स्वर्गादिक शुभगतिका कारण है, तपसंयमका जीवन है। शीलविना तप करना, व्रत धारणा, संयम पालना, मृतकका अङ्ग समान देखने मात्र है, कार्यकारी नाहीं, तैसे शीलरहित का तपव्रतसंयम धर्मकी निंदा करावनेहारा है। ऐसा जानि शील नाम धर्म का अङ्गकू पालन करहु, अर चंचल मनरूप पक्षीकू दमो, अतिचाररहित शुद्धशीलकू पुष्ट करो, धर्मरूपवनकू विध्वंस करनेवाला मनरूप मदोन्मत्त हस्तीकू रोको। चलायमान हुआ मनरूप हस्ती महान् अनर्थ करै है। हस्ती मदवान होय तदि ठाणमतैं निकलि भागै है। अर मनरूपहस्ती कामकरि उन्मत्त होय तब समभावरूपी ठाणतैं निकलि भागै है। तथा कुलकी मर्यादा संतोषादि छांडि निकसै है। मदी मत्त हस्ती तो साकल तुडाय जाय है अर मनरूप हस्ती सुबुद्धिरूप साकल तोडि विचरै है। हस्तीतो मार्गमें

चलावनेवाला महावतकू नाखै है अर कामीका मन सम्यक्धर्मके मार्गमें प्रवर्तावनेवाला ज्ञानकू छाडै है। हस्ती तो अंकुशकू नाहीं मानै है अर मनरूप हस्ती गुरुनिकू शिक्षाकारी वचनकू नाहीं मानै है। हस्ती तो महाफल अर छाया का देनेवाला वृक्षकू उखाड़ि पटकै है अर कामकरि व्याप्त मन है सो स्वर्गमोक्षरूप फलका देनेवाला अर यशरूप सुगन्धकू विस्तारता, सकल विषयांकी आतापकू हरनेवाला, ब्रह्मचर्यरूप वृक्षकू उखाडि डालै है। हस्ती तो मल कर्दमादिक दूर करनेवाला सरोवरमे स्नान करि मस्तक ऊपरि धूल नाखता धूलिरजसू क्रीडा करै है। अर कामकरि व्याप्त मन सिद्धान्तरूप सरोवरमें अवगाह नकरि अनेक अज्ञानरूप मैलकूं धोय करके हू पापरूप धूलितैं क्रीडा करै है। हस्ती तो कर्णनिकी चपलताकू धारण करै है अर कामसयुक्त मन पाचू इन्द्रियनिका विषयनिमें चचलता धारण करै है। हस्ती तो हस्तिनीमें रति करै है, कामसयुक्त मन कुबुद्धिरूप हस्तिनीमें रचै है। हस्ती हू स्वच्छन्द डोलै, मन हू स्वच्छन्द डोलै। हस्ती तो मदकरिके मत्त है, कामीका मन रूपादिक अष्टमदकरि मत्त है। हस्तीके नजीक तो कोऊ पथिक नाहीं आवै। दूर भागि जाय, अर कामकरि उन्मत्त के नजीक कोऊ एक हू गुण नाहीं रहै है। यातैं इस कामकरि उन्मत्त मनरूप हस्तीकू वैराग्यरूप स्तम्भक बाधो, यो खुल्यो हुवो महा

अनर्थ करैगा। यो काम अनंग है याकै अङ्ग नाहीं है। यो तो मनसिज है, मनहीमें याका जन्म है। मानहू मथन करनेवाला है याहीतैं याहू मनमथ कहिये है। मदनको अरि कहिये वैरी है यातैं मदनारि कहिये है। कामतैं खोटा दर्प जो गर्व सो उपजै है यातैं याहू कदर्प कहिये है। याकरि अनेक मनुष्य तिर्यंच परस्पर विरोध करि मरि जाय हैं यातैं याहू मार कहिये है। याहीतैं मनुष्यनिमें अन्य इन्द्रियनिके भोग तो प्रगट हैं अर कामके अंग ढके हुए हैं। कामके अंगका नामहू उत्तम पुरुष नाहीं उच्चारण करैं हैं। या समान अन्य पाप नाहीं है। धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला काम है, यो काम देवतानिकू भ्रष्ट करि आपके आधीन किये हैं, याहीतैं समस्त जगतहू जीतनेवाला एक काम है। याका विजय करनेवाला मोहकू सहजही जीतै है। याहीतैं कामके परिवारके अर्थि मनुष्यनी तथा देवांगना तथा तिर्यंचनी इनका संसर्ग-संगति कामविकारके उपजावनेवाली दूरहीतैं परिहार करो।

स्त्रीनिमें मनवचनकायकरि रागका त्याग करो। आप कुशीलके मार्गमें नाहीं चलना, अन्यकू कुशीलके मार्गका उपदेश मति करो। अन्य कोऊ कुशीलके मार्गमें प्रवर्तन करैं, तिनकी अनुमोदना भव्य जीव नाहीं करै हैं। बालिका स्त्रीकू देखि पुत्रीवत् निर्विकार बुद्धि करो। अर यौवनरूप [illegible] चढी, लावण्य-सौन्दर्यरूप

जलमें जाका सब अङ्ग हरि रहा ऐसी रूपवती स्त्री म बहिनवत् निर्विकार बुद्धि करहू, अर वाकू सन्मान-दान मति करो, वचन-करि आलाप मति करो। शीलवान् हैं तिनकी दृष्टि स्त्रीनिमें प्राप्ति होते ही मुद्रित हो जाय है। स्त्रीनिम वचनालाप करैगा, स्त्री क अङ्गनिका अवलोकन करैगा ताके शीलका भग अवश्य होयगा। तातैं जो गृहस्थ है ताकैं तो एक अपनी स्त्रीविना अन्य स्त्रीनिकी सगति तथा अवलोकन वचनालापकरि परिहार, अर अन्य स्त्रीनि की कथाका स्वप्नहूमें विचार नाहीं रहै है। अर एकान्त मे माता बहन पुत्रीकी सङ्गति हू नाहीं करैं हैं। मुनीश्वर तो समस्त स्त्रीमात्रका ही सम्बन्ध नाहीं करैं हैं, स्त्रीनिमें उपदेश नाही करैं हैं जातैं स्त्रीका नाम ही प्रगट दोषनिकू कहै है। स्त्री समान इस जीवकू नष्ट करने वाला, अन्य कोऊ अरि कहिये बैरी नाहीं। तातैं उत्तम पुरुष याकू नारी कहै है। दोषनिकू प्रत्यक्ष देखते-देखते आच्छादन करै तातैं याका नाम स्त्री है। याका देखने करि पुरुषको पतन हो जाय तातैं याका नाम पत्नी है। कुमरण करनेका कारण है तातैं याका नाम कमारी है। याकी सङ्गतिकरि पुरुषबुद्धिबलादिका नाम अबला है। ससारक बन्धका कारण नाम वधू है। कुटिलता मुख्यतारका याका नाम वामा है।

यातैं याका नाम रामलोचना है।

शीलवन्तकू इन्द्र नमस्कार करैं हैं। शीलवान पुरुष रत्नत्रयरूप धन लेय कामादिक लुटेरानिका भयरहित निर्वाणपुरी प्रति गमन करैं हैं। शीलकरि भूषित रूपरहित होय तथा मलीन होय रोगादिककरि व्याप्त होजाय तो हू अपना संसर्गकरि समस्त सभानिवासीनिकू मोहित करै है सुखित करै है। अर शीलरहित व्यभिचारी रूपकरि कामदेव समान है तोहू लोकनिमें थुथकार करिये हैं। यातैं याका नाम ही कुशील है। शीलनाम स्वभावका है। कामी मनुष्यका शील जो आत्माका स्वभाव सो खोटा होजाय है। यातैं याकू कुशील कहिये है। बहुरि कामी मनुष्य धर्मतैं, आत्माका स्वभावतैं, व्यवहार की शुद्धतातैं चलि जाय हैं यातैं याकू व्यभिचारी कहिये है। या समान जगमें कुकर्म नाहीं, तातैं कामकू कुकर्म कहिये हैं। यातैं मनुष्य पशुके समान होजाय यातैं याकू पशुकर्म कहिये हैं। अब्रह्म- जो आत्मा ताका ज्ञानदर्शनादिस्वभाव ताका घात यातैं होय हैं, तातैं याकू अब्रह्म कहि है। जातैं कुशीलीकी संगतितैं कुशीली होय जाय हैं। जो शील की रक्षा करी सो ही दीक्षा, तप व्रत संयम समस्त पाल्या। बहुरि जो अपना स्वभावतैं नाहीं चलायमान होना ताकू मुनीश्वर शील कहै हैं। शीलनामका गुण समस्त गुणनि में बड़ा है। शीलकरिसहित पुरुषका तो थोरा हू व्रत तप

प्रचुर फलहू फलैं हैं अर शीलविना बहुत हू तप करै हैं सो निष्फल है। इस प्रकार जानि अपने आत्मामें शीलकी शुद्धताके अर्थि शीलहीकू नित्य पूजहु। यो शीलव्रत मनुष्य जन्मही में है, अन्य गति में नाहीं है। तातैं जन्म सफल किया चाहो हो तो शील की ही उज्ज्वलता करो। ऐसैं शीलव्रतेष्वनतीचार नाम तीसरी भावना वर्णन करी ॥ ३ ॥

४ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना

अब अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावना का वर्णन करै हैं। भो आत्मन! यो मनुष्यजन्म पाय निरन्तर ज्ञानाभ्यास ही करो। ज्ञानका अभ्यास विना एक क्षणहू व्यतीत मती करो। ज्ञानके अभ्यास विना मनुष्य पशु समान है। यातैं योग्यकाल में जिन आगमको पाठ करो, अर समभाव होय तदि ध्यान करो, अर शास्त्रनिके अर्थ का चिंतवन करो, अर बहुत ज्ञानी गुरुजन तिनमें नम्रता वन्दना विनयादिक करो, अर धर्म श्रवण करने के इच्छुक कू धर्मका उपदेश करो। याही को अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहे हैं, इस अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नाम गुणका अष्टद्रव्यनितैं पूजन करकै यांका अर्घ उतारन करो और पुष्पनिकी अञ्जलि अग्रभागविषै क्षेपण करो। यहां चैतन्यकी परिणति है। याहीतैं क्षणक्षण की भावना करना। मेरे अनादि तैं

मान लोभादिक मग लगि रहे हैं इनका संस्कार अनादितैं मेरे चैतन्यरूपमें घुलि रहे हैं, अब ऐसी भावना होहु जो भगवानके परमागमका सेवनका प्रभावतैं मेरा आत्मा रागद्वेषादिकतैं भिन्न अपना ज्ञायकस्वभावरूपही में ठहरि जाय, अर रागादिकनिके वशीभूत नाहीं होय सो ही मेरी आत्माका हित है। अथवा नवीन शिष्यनिके आगे श्रुतका अर्थ ऐसा प्रकाश करना जो संशयादिक रहित शिष्यनिका हृदयमें यथावत् स्वपर पदार्थ का स्वरूप प्रगट हो जाय, पाप पुण्यका स्वरूप, लोक-अलोकका स्वरूप, मुनि श्रावक का धर्मको सत्यार्थ निर्णय हो जायतैं तासैं ज्ञानाभ्यास करना। तथा अपने चित्तमें संसार भोगदेहतैं विरक्तता चितवन करना। संसार-देह भोगनिका यथार्थ स्वरूपका चितवन करनेतैं रागद्वेषमोह ज्ञानकू विपरीत नहीं करि सकै है।

समस्त द्रव्यनिमें एक भिन्न हुआ हू आत्माका भिन्न अनुभव होय सो ही ज्ञानोपयोग है। ज्ञानाभ्यास करके विषयनिकी वाछा नष्ट होय है, कषायनिका अभाव होय है। माया मिथ्यात्व निदान-तीन शल्य ज्ञानके अभ्यास करि नष्ट होय हैं। ज्ञानके अभ्यास ही तैं मन स्थिर होय है, ज्ञानके अभ्यास करके ही अनेक प्रकारके विकल्प नष्ट होय हैं, ज्ञानाभ्यास करके धर्म ध्यानमें, शुक्ल ध्यानमें अचल होय तिष्ठै है। ज्ञानाभ्यासतैं ही

मे चलायमान नाहीं होय है। ज्ञानाभ्यास करके ही जिनेंद्र का शासन आना (प्रवर्ते) है, अशुभकर्मका नाश है ज्ञानाभ्यास करके ही होय, प्रभावना है जिन धर्मका ज्ञानके अभ्यास करके ही होय, ज्ञानका अभ्यासतें लोकनिका हृदयतें पूर्व संचय किया पाप क्षण नष्ट होजाय है। अज्ञानी घोर तपकरि कोटि पूर्वमें जिस कर्मकू खिपावै तिस कर्मकू ज्ञानी अन्तर्मुहूर्त्तमें खिपावै है। जिनधर्मका स्थम्भ ज्ञानका अभ्यास ही है। ज्ञान ही के प्रभावतें समस्त विषयनिकी वाछारहित होय संतोष धारण करिये हैं। ज्ञानहातें उत्तमक्षमादि गुण प्रगट होय हैं। ज्ञानाभ्यासतें ही भक्ष्य अभक्ष्य, योग्य अयोग्य, त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्यका विचार होय है। ज्ञान विना परमार्थ अर व्यवहार दोऊ नष्ट होजाय है। ज्ञानरहित राजपुत्रहू का निरादर होय है।

ज्ञान समान कोऊ धन नाहीं है। ज्ञानका दान समान कोऊ दान नाहीं है। दुःखित जीवकू सुखितकू सदा ज्ञान ही शरण है। ज्ञान ही स्वदेशमें, अन्य देशमें आदर करावनेवाला परमधन है। ज्ञान धन है सो किसी करि चोरया जाय नाहीं, किसीकूं दिये घटै नहीं। ज्ञान ही सम्यग्दर्शन उपजावै है। ज्ञानही तें मोक्ष होय है। सम्यग्ज्ञान आत्माका अविनाशी स्वाधीन धन है। ज्ञानविना संसार समुद्रमें डूबतेकू हस्तावलम्बन देय कौन रक्षा करे? विद्या

समान आभूषण नाहीं। विद्या विना आभूषणमात्रतैं ही सत्पुरुषनिक आदरने योग्य होय नाहीं है। निर्धनकै परम निधान प्राप्त करानेवाला एक सम्यग्ज्ञान ही है। यातैं हे भव्यजीवो! भगवान् करुणानिधान वीतराग गुरु तुमकू या शिक्षा करै हैं-अपनी आत्माकू सम्यग्ज्ञानके अभ्यास हीमैं लगावो, अर मिथ्यादृष्टिनिकरि प्ररूप्या मिथ्याज्ञान का दूरहीतैं परिहार करो, सम्यक् मिथ्याकी परीक्षा करि ग्रहण करो, अपना संतानकू पढावो, अन्यजननिकू विद्या का अभ्यास करावो। जे धनवान होय अपने धनकू सफल करया चाहो तो पढ़ने पढानेवालेकू आजीविकादिक देयकरि थिरता करावो, पुस्तक लिखाय विद्या पढनेवालेकू दयो, पुस्तकनिकू शुद्ध करो करावो, पठन पाठनके अर्थि स्थान देवो, निरन्तर पठन श्रवण में ही मनुष्य जन्मका काल व्यतीत करो। 'यो अवसर व्यतीत होतो चल्यो जाय है। जेते आयु काय इन्द्रिया बुद्धि बन रही हैं तेते मनुष्य जन्मकी एक घडी हू सम्यग्ज्ञानविना मति खोवो। ज्ञानरूप धन परलोकमैं हू लार जायगा।' इस अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगकी महिमा कोटि जिह्वानिकरि हू वर्णन नाहीं करी जाय है। याहीतैं ज्ञानोपयोगकी परमशरणके अर्थि गृहस्थ धनसहित होय सो भावना भाय अर अर्घ उतारण करैं। अर गृहकै त्यागी होय ते निरन्तर भावना भावो। ऐसैं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावना वर्णन

५ सवेग भावना

अब पञ्चमी संवेग भावना का वर्णन करै हैं—जो संसार देह भोगनितैं विरक्तपना सो संवेग है। तथा धर्म में अर धर्म का फल में अनुराग सो संवेग है। अथवा संसार देह भोगनितैं विरक्त होय करि धर्ममें अनुराग करना सो संवेग है। संसार में जिस पुत्रसू राग करिये है सो जन्म लेते ही तो स्त्री का यौवन सौंदर्यादिक बिगाड़ै, अर जन्म हुये पाछैं बड़ी आकुलता करि, बड़ा कष्ट करि, धन का खरचकरि पुत्रकू बधाइये है, अर रोगादिकनिका बड़ा जाबता अर क्षण-क्षण में बड़ी सावधानीतैं महामोही महारागी ग्लानि रहित होय बड़ा कष्ट सहिकरि बड़ा करिये है। बड़ा होय तदि आछा भोजन, आछा आभरण, आछा स्थानकू हठात् ग्रहण करे है। अर जो मूर्ख होय, व्यसनीहोय, तीव्रकषायी होय तो रात्रि दिन क्लेश होने का परिणाम नाहीं कहने म आवै है। पुत्र के मोहतैं परिग्रह में बड़ी मूर्च्छा बधै है, अर समर्थ होजाय, अर अपनी आज्ञा में मद होय सो महा आर्त रूप हुआ मरण पर्यंत क्लेश नाहीं छाडै है। अर जो पितासू अपना कार्य करने वाला समझे जेते प्रीति करै है, असमर्थ होजाय तासू राग नाहीं करै, धन रहित का निरादर करै है। यातैं पुत्र का स्वरूपकू समझि राग त्यागि परम

धर्मसू राग करो। पुत्र के अर्थि अन्यायतैं धनादिपरिग्रह के ग्रहण का परित्याग करो।

बहुरि स्त्री हू मोहनाम ठिगकी महापाशी है, ममता उपजाने वाली है, तृष्णाकू बधावने वाली है। यातैं स्त्री में तीव्रराग है सो धर्म में प्रवृत्ति का नाश करै है, लोभकू अत्यन्त बधावै है, परिग्रह में मूर्छा बधावै है, ध्यान स्वाध्याय में विघ्न करै है, विषयनि में अघ करने वाली है, क्रोधादि च्यारों कषायनिकी तीव्रता करने वाली है, संयम का घात करने वाली है, कलह का मूल है, दुर्ध्यान को स्थान है, मरण बिगाडने वाली है। इत्यादिक दोषनिका मूल कारण जानि स्त्री के संग में राग मात्र छांडि वीतराग धर्मसू अपना सम्बन्ध करो। बहुरि कलिकाल के मित्र हू विषयनि में उलझावनहारे हैं, समस्त व्यसननि में सहकारी हैं। धनवान देखे हैं तिनतैं अनेक प्रकार मित्रता करै हैं। निर्धनतैं कोऊ सभाषण हू नाहीं करै है। तातैं भो ज्ञानी जन हो! जो संसार पतन को भय है तो अन्य समस्ततैं मित्रता छांडि परमधर्म म अनुराग करो। अर संसार निरंतर जन्म-मरण रूप है। जन्म दिनतैं ही मरण के सन्मुख निरंतर प्रयाण करै है। अनन्तानंतकाल जन्म-मरण करते भया। तातैं पंच परिवर्तनरूप संसारतैं विरागता भावो।

अर ये [illegible] क विषय है ते आत्मा

स्वरूपकू भुलावने वाले हैं, तृष्णा के बधावने वाले हैं, अतृप्तिता के करने वाले हैं विषयनिकौसौ आताप त्रैलोक्य म अन्य नाहीं है। विषय हैं ते नरकादि कुगति के कारण हैं, धर्मतैं पराङ्मुख करैं हैं, कषायनिकू बधावने वाले हैं, विषके समान मारने वाले हैं, अर अग्निसमान दाह के उपजावने वाले हैं तातैं विषयनितैं राग छोडना ही परम कल्याण है। अर शरीर है सो रोगानका स्थान है, महामलीन दुर्गन्ध सप्तधातुमय है, मल मूत्रादिकर भरया है, वातपित्तकफमय है, पवन के आधारतैं हलन चलनादिक करै है, सामता क्षुधातृषा की वेदना उपजावै है। समस्त अशुचिता पुंज है, दिन दिन जीर्ण होता चल्या जाय है, कोटिनि उपाय करके हू रक्षा किया हुआ मरणकू प्राप्त होय है। ऐसा देहतैं विरागता ही श्रेष्ठ है। ऐसे पुत्र मित्र कलत्र संसार भोग शरीर का दुख करने वाला स्वरूप जानि विराग भावकू प्राप्त होना सो संवेग है। संवेग भावनाकू निरन्तर चिन्तवन करना ही श्रेष्ठ है। यातैं मेरे हृदय म निरन्तर संवेग भावना तिष्ठो, ऐसा चिंतवन करते संसार देह भोगनितैं विरक्तता होय तदि परम धर्म म अनुराग होय है।

धर्म शब्द का अर्थ ऐसा जानना—जो वस्तु का स्वभाव है सो धर्म है, तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षण रूप धर्म है, तथा रत्नत्रयरूप धर्म है, तथा जीवनि का दयारूप धर्म है।

ऐसे पर्यायबुद्धि शिष्यनि के समझाने क अर्थि धर्मशब्द च्यार प्रकारकरि वर्णन किया है, तो हू वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव ही दशलक्षण है। क्षमादि दश प्रकार आत्मा का ही स्वभाव है अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हू आत्मातैं भिन्न नाहीं है। अर दया है सो हू आत्मा ही का स्वभाव है, सो ऐसा जिनेंद्रकरि कह्या आत्मा का स्वभाव रूप दशलक्षण धर्म में जो अनुराग, सो संवेग धर्म है। अर कपटरहित रत्नत्रय धर्म में अनुराग करना सो संवेग धर्म है, तथा मुनिश्वरनिका अर श्रावकका धर्म म अनुराग सो संवेग है, तथा जीवनिकी रक्षा करन रूप जीवनिकी दया म परिणाम होना सो भगवान् ने संवेग कह्या है। अथवा वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन है, तिस स्वभाव म लीन होना सो प्रशंसा करने योग्य संवेग है। जातैं धर्म में अनुराग परिणाम सो संवेग है। तथा धर्म का फलकू अत्यंतमिष्ट जानना सो संवेग है, ये तीर्थंकरपना, चक्रवर्ती होना नारायण प्रतिनारायण बलभद्रादिक उपजना सो धर्म ही का फल है। तथा बाधारहित केवली होना तथा स्वर्गादिकनि म महान ऋद्धि का धारक देव होना, तथा इन्द्र होना तथा अनुत्तरादिक विमान म अहमिंद्र होना सो समस्त पूर्व जन्म में आराधन किया धर्म का फल है।

जो भोगभूमि आदि में

राजसपदा पावना, अखंड ऐश्वर्य पावना, अनेक देशनि में आज्ञा प्रवर्तन, प्रचुर धनसपदा पावना, रूप की अधिकता पावनी, बलकी अधिकता, चतुरता, महान् पंडितपना, सर्व लोक में मान्यता, निर्मल यशकी विख्यातता, बुद्धि की उज्ज्वलता, आज्ञाकारी धर्मात्मा कुटुम्ब का सयोग होना, सत्पुरुषनि की संगति मिलना, रोगरहित होना, दीर्घआयु, इन्द्रियनि की उज्ज्वलता, न्यायमार्ग मे प्रवर्तना, वचन की मिष्टता इत्यादिक उत्तम सामग्री का पावना है सो जु कोऊ धर्म में प्रीति करी है, तथा धर्मात्मानिका सेवन किया है, धर्म की तथा धर्मात्मानिकी प्रशसा की है ताका फल है। कल्पवृक्ष चिन्तामणि समस्त धर्मात्माक द्वारे खड़े जानहू। धर्मक फल की महिमा कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कहनेकू समर्थ नाहीं होइये है। ऐसे धर्मके फलकू त्रैलोक्य में उत्कृष्ट जानै है ताके सवेग भावना होय है। बहुरि धर्मसहित सधर्मीनिकू देखि आनन्द उपजना, तथा धर्म की कथनी म आनन्दमय होना और भोगानतै विरक्त होना सो सवेग नामा पचम अग है। याकू आत्माका हित समझि याकी निरन्तर भावना भावो। अर भावनाके आनन्द करि सहित होय याकी प्राप्तिके अर्थि याका महा अर्थ उतारण करो। ऐसे सवेगनामा पचम भावना वर्णन करी ॥ ५ ॥

६ शक्तितस्त्याग भावना

अब शक्तिप्रमाणत्याग भावना वर्णन करिये है। त्यागनाम भावना प्रशमायोग्य मनुष्यजन्मका मण्डन है। अपने हृदयमें त्यागभाव रचनेके अर्थि अनेक उत्सवरूप वादित्रनिकू बजाय याका महान अर्घ उतारण करो। बाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकारका परिग्रहतैं ममता छाडिनेकरि त्यागधर्म होय है। अन्तरङ्गपरिग्रह चौदह प्रकार है सो ऐसे जानना। जाएया बिना ग्रहण त्याग वृथा है। मिथ्यात्व, अर स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप परिणाम सो वेदपरिग्रह है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, राग, द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह जानना। तहां जो शरीरादिक पर द्रव्यनिमें आत्मबुद्धि करना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है। यद्यपि जो वस्तु है सो अपना द्रव्य, अपना गुण, अपना पर्याय है सो ही अपना स्वरूप है। जैसे स्वर्णनाम द्रव्य है, सुवर्णक पीतादिक गुण है, कुण्डलादि पर्याय हैं, सो समस्त सुवर्ण ही हैं, यातैं सुवर्ण अन्यवस्तुका नाहीं, अन्य वस्तु सुवर्णक नाहीं, सुवर्ण है सो सुवर्ण हीका है अन्य वस्तुका कोऊ हुआ नाहीं, होहै नाहीं, होयगा नाहीं। अपना स्वरूप है सो ही आपका है। ऐसैं आत्मा है सो आत्माहीका है, आत्माका अन्य कोऊ ही द्रव्य नाहीं है। अब जो देहू आपा मानै है, जो मैं गोरा, मैं साँवला,

मैं राजा, मैं रङ्क, मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं वृद्ध, मैं बाल, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच इत्यादिक कर्मकृत विनाशीक परद्रव्य कृत पर्यायमें आत्मबुद्धि करना सो ही मिथ्यात्वनाम परिग्रह है। मिथ्यादर्शनतैं ही मेरा गृह, मेरा पुत्र, मेरा राज, मैं ऊंच, मैं नीच इत्यादि नाम मानि समस्त परपदार्थनिमें आत्मबुद्धि करै है, पुद्गलका नाशकूं अपना नाश मानै है, याके बधनेतैं अपना बधना, घटनेतैं घटना मानि पर्यायमें आत्मबुद्धिकरि अनादिकालतैं आपा भूलि रह्या है। यातैं समस्त परिग्रहमें आत्मबुद्धिका मूल मिथ्यात्वनामपरिग्रह है। जाकै मिथ्याज्ञान नाहीं सो परद्रव्यनिमें 'हमारा' ऐसैं कहता हुआ हू परद्रव्यनिमें कदाचित् आपा नहीं मानै है।

बहुरि वेदक उदयतैं स्त्री पुरुष न में जो कामसेवनकू परिणाम होय है तिस काममें तन्मय होय कामकू भावकू आत्मभाव मानना सो वेदपरिग्रह है। काम तो वीर्यादिक का प्रेरया देहका विकार है। इसकू अपना स्वरूप जानै सो वेदपरिग्रह है। बहुरि धन ऐश्वर्य पुत्र स्त्री आभरणादि परद्रव्यादिकमें आसक्तता सो रागपरिग्रह है। अन्यका विभव परिवार ऐश्वर्य पाण्डित्यादिक देखि वैरभाव करना सो द्वेषपरिग्रह है। हास्यमें आसक्त होना सो हास्यपरिग्रह है। अपना मरण होनतैं, मित्रनिका परिग्रहादिकनिकरि

वियोग होनतैं निरन्तर भयवान रहना सो भयपरिग्रह है। पंच इन्द्रियनिकरि वांछित भोग-उपभोगक भोगनिमें लीन हो जाना सो रति परिग्रह है। अनिष्टवस्तुका संयोगमें परिणामनिका संक्लेशरूप होना सो अरतिपरिग्रह है। अपना इष्ट स्त्री पुत्र मित्र धन जीविकादिकका वियोग होते तिनका संयोगकी वांछा करक संक्लेशरूप होना सो शोक परिग्रह है। बहुरि घृणावान पुद्गलनिक देखनेतैं श्रवणतैं चिंतवनतैं स्पर्शनतैं परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सा नाम परिग्रह है। अथवा अन्यका उदय देखि परिणाम म क्लेशित होना सुहावे नाहीं सो जुगुप्सा परिग्रह है। बहुरि परिणाममें रोषकरि तप्त होना सो क्रोध परिग्रह है। बहुरि उच्चकुल जाति धन ऐश्वर्य रूप बल ज्ञान बुद्धि इनकरि आपकू अधिक जानि मद करना तथा परकू घाट जानि निरादर करना, कठोर परिणाम रखना सो मान परिग्रह है। अनेक कपटछलादिकरि वक्रपरिणाम रखना सो माया परिग्रह है, परद्रव्यनिक ग्रहणमें तृष्णा सो लोभ परिग्रह है। ऐसैं सांसारिक भ्रमणक कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणनिके घातक चौदह प्रकार अन्तरङ्गपरिग्रह है। अर इनहीतैं मूर्च्छाके कारण धनधान्यक्षेत्रसुवर्णादिक स्त्रीपुत्रादि चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह हैं। एसे अन्तरङ्ग बहिरंग दोय प्रकारके परिग्रहके त्यागनेतैं त्याग धर्म होय है। यद्यपि बाह्यपरिग्रहरहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभाव ही तैं होय है

परन्तु अभ्यन्तर परिग्रहका त्याग बहुत दुर्लभ है। यातैं दोय प्रकार परिग्रह का एक देश त्यागतो श्रावकके होय है अर सकल त्याग मुनिवरनिके होय है।

बहुरि कषायनिका त्यागतैं त्यागधर्म होय है। बहुरि इन्द्रियनिकू विषयनितैं रोककरि त्याग होय है। बहुरि रसनिका त्यागकरि त्यागधर्म होय है, जातैं रसना इन्द्रिय की लोलुपता जीतनतैं समस्त पापनिका त्याग सहज होय है। बहुरि जिनेन्द्रका परमागमका अध्ययन करना, अन्यकू अध्ययन करावना, शास्त्रनिकू लिखाय देना, शोधना शुधावना सो परम उपकार करनेवाला त्यागधर्म होय है। बहुरि मनकू दुष्टविकल्पनिके कारण छांडि चारि अनुयोग की चरचामें चित्त लगावना सो त्यागधर्म है। बहुरि मोहका नाश करनेवाला धर्मका उपदेश श्रावकनिकू देना सो महापुण्य का उपजानेवाला त्यागधर्म है। वीतरागधर्मका उपदेशतैं अनेकप्राणीनिका परिणाम पापतैं भयभीत होय है, धर्मके प्रभावक अनेक प्राणी प्राप्त होय हैं। बहुरि उत्तम मध्यम जघन्य ऐसैं तीन प्रकारके पात्रनिकू भक्तिकरि युक्त होय अहारदान देना, प्रासुक औषधि देना, ज्ञानके उपकरण सिद्धान्त के पढने योग्य पुस्तकका दान देना, मुनिके योग्य तथा श्रावकके योग्य वस्तिका दान देना, गुणनिके धारकनिकू तकी वृद्धि करनेवाला, स्वाध्यायमें लीन करने वाला,

ध्यानकी वृद्धिका कारण आहारादिक चारि प्रकार का दान परमभक्तितैं विकसितचित्त हुआ, अपना जन्मकू कृतार्थ मानता, गृहाचारकू सफल मानता, बड़ा आदरतैं पात्रदान करो। पात्रदान होना महाभाग्यतैं जिनका भला होना है तिनके होय है। पात्र का लाभ होना ही दुर्लभ है। अर भक्तिसहित पात्रदान होय जाय ताकी महिमा कहनेकू कौन समर्थ है? बहुरि क्षुधा तृषाकरि जो पीडित होय तथा रोगी होय, दरिद्री होय, वृद्ध होय, दीन होय तिनकू अनुकंपाकरि दान देना सो समस्त त्यागधर्म है। त्यागहीतैं मनुष्यजन्म सफल है। त्यागहीतैं धन धान्यादिक पावना सफल है। त्याग बिना गृहस्थका गृह है सो श्मशान समान है, अर गृहस्थीका स्वामी पुरुष मृतक समान है, अर स्त्री पुत्रादिक गृद्धपक्षी समान हैं। सो याका धनरूप मांस चूंटि-चूंटि खाय है। ऐसें त्याग भावना वर्णन करी ॥६॥

७ शक्तितस्तप भावना

अब शक्तिप्रमाणतप भावना अंगीकार करना। क्योंकि यो शरीर दुःखको कारण है। अनेक दुःख यो शरीर उपजावै है। अर यो शरीर अनित्य है, अस्थिर है, अशुचि है, कृतघ्नवत् है, कोट्यां उपकार करता हू जैसें कृतघ्न अपना नाहीं होय है तैसें देहके नाना उपकार सेवा करता

हू अपना नाहीं होय है। यातैं यथेष्टविधि करि याकू पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर बिना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है। सेवक की ज्यों योग्य भोजन देय यथा शक्ति जिनेन्द्रका मार्ग तैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप बिना इन्द्रियनिकी विषयनि म लोलुपता घटै नाहीं। तप बिना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकू नष्ट करनेकू समर्थता होय नाहीं। तप बिना आत्माकू अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं। अर तप बिना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं। जो तप के प्रभावतैं शरीरकू साधि राख्या होय तो क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक परिषह आये कायरता उपजै नाहीं, संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं। तप है सो कर्म की निर्जरा का कारण है। तातैं तप ही करना श्रेष्ठ है।

अपनी शक्तिकू नाहीं छिपाय करिकैं जैसें जिनेन्द्र के मार्गतैं विरोधरहित होय तैसें तप करो। तपनाम सुभट का सहाय बिना ये अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप धनकू वान क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एक क्षण में लूटि लेवेंगे, तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूप संसार में दीर्घ काल भ्रमण करोगे। याहीतैं जैसें वात पित्त कफ ये त्रिदोष विपरीत होय रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसें तप करना उचित है। समस्तनैं प्रधान तप तो दिगम्बरपणा

है। कैसा है दिगम्बरपणा, जो घरकी ममतारूप पाशीकू छेदि देहका समस्त सुखियापणा छांडि, अपना शरीरतैं शीत उष्ण तावडा वर्षा पवन डास मच्छर मक्षिकादिकनि की बाधा क जीतने क सम्मुख होय, कोपीनादिक समस्त वस्त्रादिक का त्यागकरि, दशदिशारूप ही जामे वस्त्र हैं एसा दिगम्बरपणा धारण करना सो अतिशयरूप तप जानना। जाका स्वरूपकू देखते, श्रवण करते बड़े बडे शूरवीर कंपायमान हो जाय हैं। तातें भो शक्तिकू प्रकट करने वाले हो! जो ससार के बधन से छूटना चाहो हो तो जिनेश्वर मतधा दीक्षा धारण करो, जातें अग का सुखियापणा नष्ट होय, उपसर्ग परीषह सहने म कायरताका अभाव होय सो तप है। जातें स्वर्गलोककी रभा अर तिलोत्तमा हू अपने हावभाव विलासविभ्रमादिककरि मनकू कामका विकार सहित नाहीं कर सकै ऐसा कामकू नष्ट करै सो तप है।

जो दोष प्रकार के परिग्रह म इच्छा का अभाव हो जाय सो तप है। तप तो वही है जो निर्जनवन अर पर्वतनिका भयकर गुफा जहा भूत-राक्षसादिकनिके अनेक विकार प्रवर्तें, अर सिंह-व्याघ्रादिकनिके भयङ्कर प्रचार होय रहें, अर कोटयां वृक्षनिकरि अन्धकार होय रह्या, अर जहा सर्प अजगर-रीछ चीता इत्यादिक भयङ्कर दुष्टतिर्यंचनिका,

सचार होय रहा ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआ ध्यान स्वाध्याय में निराकुल हुवा तिष्ठै सो तप है। जो आहारका लाभ अलाभ मे समभावक धारक, मीठा खारा कडवा कषायला ठडा ताता सरस नीरस भोजन जलादिक मे लालसारहित, सतोषरूप अमृतका पान करते, आनन्द म तिष्ठै सो तप है। जो दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यचनिकरि किये घोर उपसर्गनिकू आवते कायरता छाडि कषायमान नाहीं होना होना सो तप है। जातैं चिरकालका सचय किया कर्म निर्जरै सो तप है। बहुरि जो कुवचन कहनवाले में, ताडन मारन अग्नि में ज्वालनादि उपद्रव करने वाले मे द्वेषबुद्धिकरि कलुष परिणाम नाहीं करना, अर स्तुति पूजनादि करनेवाले म राग भाव नाहीं उपजाना सो तप है।

बहुरि पच महाव्रतनिका, अर पच समितिका पालन, अर पच इन्द्रियनिका निरोध करना, अर छह आवश्यकका समय को समय करना, अर अपने मस्तक क डाढी-मूछ क केशनिकू अपने हस्तते उपाडना दिनम उपाडना, दोय महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है, मध्यम तीन महीने गये लोंच करै, जघन्य चार महीने गये लोंच करै है सो लोंच करना तू तप है। अन्य भेषीनिकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाडै है, शीतकाल ग्रीष्मकाल वर्षाकालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना, अर भूमिशयनकरि

अल्पकाल निद्रा लेना, दन्तनिकू अगुलीकरि हू नाहीं धोवना, अर एक बार भोजन, खडा भोजन, रसनीरस स्वादकू छाडि भोजन करै, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड पालना सो बडा तप है। इन मूलगुणनि के प्रभावतैं घाति याकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञानकू प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो! धर्मको अग यो तप है। याकी निर्विघ्न प्राप्ति के अर्थि याहीका स्तवन पूजनादिककरि याका महाअर्थ उतारण करो। यातैं दूरि अर अत्यन्त परोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकू प्राप्त होय है। ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया ॥ ७ ॥

८ साधु समाधि भावना

साधुसमाधिनामा अष्टमी भावनाकू कहै हैं। जैसे भण्डारमें लगी हुई अग्निकू गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकू बुझाइये है, क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है, तैसै अनेक व्रत शीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनके कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होतैं, विघ्नकू दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है। अथवा गृहस्थके अपने परिणामकू बिगाडनेवाला मरण आ जाय उपसर्ग आ जाय, रोग आ जाय, इष्ट वियोग हो जाय,

अनिष्टसयोग आ जाय तदि भयकू नाहीं प्राप्त होना सो साधुसमाधि है। सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचार करै हैं हे आत्मन्! तुम अखंड अविनाशी, ज्ञान-दर्शनस्वभाव हो, तुम्हारा मरण नाहीं, जो उपज्या है सो विनशैगा, पर्याय का विनाश है, चैतन्य द्रव्यका विनाश नाहीं है। पाच इन्द्रिय अर मनबल वचनबल कायबल आयुबल अर उच्छ्वास ये दश प्राण हैं इनका नाशकू मरण कहिये है। तुम्हारा ज्ञानदर्शन सुखसत्ता इत्यादिक भावप्राण हैं। तिनका कदाचित् नाश नाहीं है। तातैं देहका नाशकू अपना नाश मानना सो मिथ्याज्ञान है।

भो ज्ञानिन्! हजारां कृमिनिकरि भरया हाडमांसमय दुर्गन्धयुक्त विनाशीक देहका नाश होतै तुम्हार कहा भया है, तुम तो अविनाशी ज्ञानमय हो। या मृत्यु है सो बडा उपकारी मित्र है जो गल्या सड्या देहमेतैं काढि तुमकू देवादिकनिका उत्तमदेह धारण करावै है। मरण मित्र नाहीं होता तो इस देहते केते काल बसता अर रोगका अर दु खनिका भरया देहतैं कौन निकासता, अर समाधि मरणादिकरि आत्माका उद्धार कैसै होता? अर व्रततप सयमका उत्तम फल, मृत्युनाम मित्रका उपकार विना कैसैं पावता, अर पापतैं कौन भयभीत होता। अर मृत्युरूप कल्पवृक्षविना चारि आराधनाका शरण ग्रहण कराय ससाररूप कर्दमतैं कौन काढता? तातैं ससारमे जिनका

त्रिदोषकी घटती वधतीतैं ज्वर कांस स्वास अतिसार उदरशूल शिरशूल नेत्रका विकार वातादिपीडा होते ज्ञानी ऐसा विचार करै हैं,—जो यो रोग मेरे उत्पन्न भया है सो याकू असातावेदनीय कर्मको उदय तो अतरग कारण है, अर द्रव्य क्षेत्र-कालादि वहिरग कारण हैं। सो कर्मके उदयकू उपशम हुआ रोग का नाश होयगा। असाता का प्रवल उदयकू होते वाह्य औषधादिक ही रोग मेटनकू समर्थन नाहीं है। अर असाताकर्मके हरनेकू कोऊ देव दानव मत्र-तत्र औषधादिक समर्थ हैं नाहीं। यातैं अव सक्लेशकू छाडि समता ग्रहण करना। अर वाह्य औषधादिक हैं ते असाताके मन्द उदय होतैं सहकारी कारण हैं। असाताका प्रवल उदय होतैं औषधादिक वाह्यकारण रोग मेटनेकू समर्थ नाहीं है। ऐसा विचारि असाताकर्मके नाशका कारण [illegible]

इस संसारमें परिभ्रमण करता अनन्तानन्तकाल व्यतीत भया। समस्त समागम अनेकवार पाया परन्तु सम्यक्समाधिमरणकू नाहीं प्राप्त भया हूं। जो समाधि मरण एक वार हू होता तो जन्ममरणका पात्र नाहीं होता। संसार परिभ्रमण करता मैं भव भवमें अनेक नवीन नवीन देह धारण किये। ऐसा कौन देह है जो मैं नाहीं धारण किया। अब इस वर्तमान देहमें कहा ममत्व करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक स्वजन कुटुम्बजनका हू सम्बन्ध भया है, अब ही स्वजन नाहीं मिले हैं। यातैं कौन २ स्वजनमें राग करूं? अर मेरे भव भवमें अनेक वार राज ऋद्धि हू उपजा। अब मैं इस तुच्छ सम्पदामें ममता कहा करूंगा? भव भवमें मेरे अनेक माता पिता हू पालना करने वाले हो गये, अब ही नाहीं भये हैं। बहुरि मेरे भव भवमें नारीपणा हू भया, अर मेरे भव भवमें कामकी तीव्र लम्पटतासहित नपुंसकपणा हू भया, अर मेरे भव भवमें अनेकवार पुरुषपणा हू भया, तो हू वदक अभिमान-करि नष्ट होता फिरया। अर भव भवमें अनेक जातिक दुःखकू प्राप्त भया। ऐसा संसारमें कोऊ दुःख नाहीं है जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर ऐसा कोऊ इन्द्रियजनित सुख हू नाहीं है जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर अनेकवार नरकमें नारकी होय २ असंख्यातकालपर्यन्त प्रमाणरहित नानाप्रकारके दुःख भोगे, अर अनेक भव

तिर्यंचनिके प्राप्त होय असंख्यात अनन्तवार जन्ममरण करता, अनेकप्रकारके दुःख भोगता वारंवार परिभ्रमण किया।

अनेकवार धर्मवासनारहित मिथ्यादृष्टि मनुष्य हूं भया। अर अनेकवार देवलोकनिमें हूं प्राप्त भया। अर अनेक भवनिमें जिनेन्द्रकूं पूज्या। अनेक भवनिमें गुरु वन्दना हु करी अनेक भवनिमें मिथ्यादृष्टि हुआ, वपरै आत्मनिंदाहू करी। अनेक भवनिमें दुर्द्धर तप हू धारण किया। अनेक भवनिमें भगवानका समवसरण हू में सेवा किया। अर अनेक भवनिमें श्रुतज्ञान के अङ्गनिका हूं पठन पाठनादिक अभ्यास किया, तथापि अनन्तकाल भव निवासी ही रह्या। यद्यपि जिनेन्द्रकूं पूजना, गुरुनिकी वंदन तथा आत्मनिंदा करना तथा दुर्द्धर तपश्चरण करन समवसरण में जावना, श्रुतनिके अङ्गनिका अभ्यास करना इत्यादिक ये कार्य प्रशंसायोग्य हैं, पापका विनाशक हैं पुण्यका कारण हैं, तो हू सम्यग्दर्शन विना अकृतार्थ हैं संसारपरिभ्रमणकूं नाहीं रोकि सक हैं। सम्यग्दर्शन विन समस्त आछी क्रिया पुण्यका बन्ध करनेवाली है। सम्यग्दर्शन सहित होय तदि संसारको छेद करें। सो ही आत्मानुशासन में कह्या है—

शमबोधवृत्ततपसा पाषाणस्येव गौरव पुंस ।
पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १ ॥

अर्थ—पुरुषके शमभाव अर ज्ञान अर चारित्र अर

तप इनको महानपणो पाषाणका महानपणाके तुल्य है, अर ये ही जे शमबोध चारित्र अर तप जो सम्यक्त्व सहित होंय तो महामणि की ज्यों पूज्य हो जाय।

भावार्थ—जगत्में मणि है सो हू पाषाण है, अर अय झाझडा पत्थर है सो हू पाषाण है, परन्तु पाषाण तो मण दोय मण हू वाधि ले जाय, बचै तो हू एक पीसो उपजै, तातैं एक दिनहू पेट नाहीं भरे। अर मणि कई रती हू ले जाय बचै, तो हजारां रुपया उपजै, समस्त जन्म का दारिद्र नष्ट होजाय। तैसैं शमभाव अर शास्त्रनिका ज्ञान अर चारित्रधारण अर घोर तपश्चरण ये सम्यक्त्व विना बहुत काल धारण करै तो राज्य सम्पदा पावै तथा मन्दकषायके प्रभावतैं देवलोकमें जाय उपजे। फिर चयकरि एकेंद्रियादिक पर्यायनिम परिभ्रमण करै। अर जो सम्यक्त्वसहित होय तो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि मुक्त होजाय। तातैं सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि है सो तिनकू पूजो वा गुरुवंदना करो, समवसरणम जावो, श्रुतका अभ्यास करो, तप करो तो हू अनन्तकाल संसारवास ही करैगा। इस तीन भुवनमें सुख दुःखकी समस्त सामग्री यो जीव अनन्तवार पाई। कोऊ हू दुर्लभ नाहीं। एक साधुसमाधि जो रत्नत्रयका लाभकू निर्विघ्न परलोकताई ले जाना है सो रत्नत्रयसहित हुआ देहकू छाडै है तिनके साधुसमाधि होय ताका पावना ही दुर्लभ है।

है सो चतुर्गतिनिमें परिभ्रमणके दुःखका अभावकरि निश्चल स्वाधीन अनन्त सुखकू प्राप्त करै है। जो पुरुष साधुसमाधि भावनाकू निर्विघ्न प्राप्त होनेके अर्थि इस भावनाकू भावता याका महान अर्थ उतारण करै है सो ही शीघ्र संसारसमुद्रकू तिरि अष्टगुणनिका धारक सिद्ध होय है। ऐसैं साधुसमाधिनामा अष्टमी भावना वर्णन करी ॥ ८ ॥

९ वैयावृत्यकरण भावना

अब वैयावृत्तिनामा नवमी भावना वर्णन करिये है। कोढ अर उदरकी जो व्यथा आमवात, संग्रहणी, कठोदर, सफोदर, नेत्रशूल, कर्णशूल, शिर शूल, दन्तशूल, तथा ज्वर, कास, स्वास, जरा इत्यादिक रोगनिकरि पीडित जे मुनि तथा श्रावक तिनकू निर्दोष आहार औषधि वस्तिका दिक करि सेवा करना, तिनकी शुश्रूषा करना, विनय करना, आदर करना, दुख दूरि करने में यत्न करना सो समस्त वैयावृत्य है। जे तपकरि तप्त होय अर रोग करि युक्त जिनका शरीर होय, तिनकू वेदना देखकर तिनके अर्थि प्रासुक औषधि तथा पथ्यादिककरि रोगका उपशम करना, सो नवमवैयावृत्य नाम गुण है। वैयावृत्य मुनीश्वरनिके दश भेद करि दश प्रकार हैं। आचार्य उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ। इन दश प्रकार क मुनीश्वरनिके परस्पर वैयावृत्य

होय है। सायकी चेष्टा करि या अन्य द्रव्यकरि दुःख वेदनादिक दूर करनेम व्यापार करिये, प्रवर्तन करिये सो वैयावृत्य है। इन दश प्रकारक मुनिनिका ऐसा स्वरूप जानना-जिनतैं स्वर्ग मोक्षके सुखके बीज जे व्रत तिनतैं आदर सहित ग्रहण करिकें भव्यजीव अपने हितके अर्थि आचरण करिए त सम्यक्ज्ञानादि गुणनिके धारक आचार्य हैं।

भावार्थ-जिनतैं मोक्ष स्वर्ग के साधक व्रत आचरण करिये त आचार्य हैं। जिनका समीपहू प्राप्त होय आगमके अध्ययन करिये ते व्रत शील श्रुतके आधार एसे उपाध्याय हैं। महान् अनशनादितपम तिष्ठैं ते तपस्वी हैं। जे श्रुतके शिक्षणम तत्पर, निरन्तर व्रतनिकी भावनामे तत्पर ते शैक्ष्य हैं। रोगादिककरि जाका शरीर क्लेशित होय सो ग्लान हैं। वृद्ध मुनिनिकी परिपाटीका होय सो गण है। आपकू दीक्षा देने वाला आचार्यका शिष्य होय सो कुल है। च्यारि प्रकार के मुनिका समूह सो संघ है। चिरकालका दीक्षित होय सो साधु है। जो पण्डितपणाकरि, वक्ता पणाकरि, ऊंचा कुल करि, लोकनिम मान्य होय, धर्म का गुरुकुलका गौरवपणाका उत्पन्न करने वाला होय सो मनोज्ञ है। अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि हू संसार का अभाव रूपपणातैं मनोज्ञ है।

इन दश प्रकार के मुनिनिकें रोग आवाय

करि खेदित होय तथा श्रद्धानादि बिगडि मिथ्यात्वादिक प्राप्त होय जाय, तो प्रासुक औषधि भोजनपान, योग्यस्थान, आसन, काष्ठफलक, तृणादिकनिका संस्तरादिकनिकरि, अर पुस्तक पीछिकादिक धर्मोपकरणकरि जो प्रतिकार उपकार करिये, तथा सम्यक्त्वमें फेरि स्थापना करिये इत्यादि उपकार सो वैयावृत्य है। अर जो बाह्य भोजनपान औषधादिक नाहीं सम्भवत होय, तो अपने कायकरकि कफ तथा नासिकामल, मूत्रादिक दूरि करनकरि तथा उनके अनुकूल आचरण करनकरि वैयावृत्य होय है। इस वैयावृत्य संयम का स्थापन, ग्लानिको अभाव, अर प्रवचन में वात्सल्यपणो, अर सनाथपणो इत्यादि अनेक गुण प्रकट होय है। वैयावृत्य ही परम धर्म है। वैयावृत्य नाहीं होय तो मोक्षमार्ग बिगडि जाय। आचार्यादिक है ते शिष्य मुनि तथा रोगी इत्यादिकका वैयावृत्य करनेतैं बहुत विशुद्धता उच्चताकू प्राप्त होय हैं। ऐसे ही श्रावकादिक मुनिका वैयावृत्य करैं तथा श्रावक श्राविकाका करैं। औषधिदानकरि वैयावृत्य करैं। अर भक्तिपूर्वक युक्तिकरि देहका आधार आहारदानकरि वैयावृत्य करैं। अर कर्मके उदयतैं दोष लगि गया होय ताका ढाकना तथा श्रद्धानकू चलायमान भया होय ताकू सम्यग्दर्शन ग्रहण करावना तथा जिनेन्द्रके मार्गकू चलि गया होय ताकू मार्गमें स्थापन करना इत्यादिक उपकारकरि वैयावृत्य है।

बहुरि जो आचार्यादि गुरु शिष्यकू [illegible] पढाय तथा व्रत संयमादिक की शुद्धिको उपदेश करै सो शिष्यका वैयावृत्य है। अर शिष्यकू गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण प्रवर्तना, गुरुनिका चरणनिका सेवन करै सो आचार्यका वैयावृत्य है। बहुरि अपना [illegible] आत्माकू रागद्वेषादिक दोषनिकरि लिप्त नहीं [illegible] सो अपने आत्माका वैयावृत्य है। तथा अपने [illegible] भगवान्कू परमागमम लगाय देना तथा [illegible] धर्ममें लीन होना सो आत्मवैयावृत्य है। तथा [illegible] लोभादिककू अर इन्द्रियनिके विषयनिकू [illegible] होना सो अपना आत्माका वैयावृत्य है। [illegible] औरकू विशेष जानना—जो रोगी मुनि [illegible] प्रात काल अर आवश्यक शयन [illegible] पुस्तक नेत्रनिसू देखि मयूरपिच्छिकरि [illegible] तथा अशक्त रोगी मुनिका आहार औषधि [illegible] उपचार करना तथा शुद्ध [illegible], धर्मका उपदेशकरि, परिणामकू धर्ममें लीन [illegible] बैठावना, मलमूत्र करवाना, [illegible] इत्यादिका वैयावृत्य करै। तथा कोऊ साधु [illegible] तथा भील म्लेच्छ दुष्टराजा [illegible] उपद्रव हुआ होय, दुर्भिक्ष मारी [illegible] इत्यादिक [illegible] पीडा होनतैं परिणाम कायर [illegible], ताकू [illegible]

कुशल पूछ करि आदरकरि, सिद्धान्तर्तें शिक्षाकरि स्थिती करण करना सो वैयावृत्य है।

बहुरि जो समर्थ होय करिक हूँ अपना बलीवीर्यकू छिपाय वैयावृत्य नाहीं करै है सो धर्मरहित है। तीर्थंकरनिकी आज्ञा भङ्ग करि, श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी, आचार बिगाड्या, प्रभावना नष्ट करी, धर्मात्मा की आपदाहू म उपकार नाहीं किया, तदि धर्मतें पराङ्मुख भया। अर जाकै ऐसा परिणाम होय जो अहो मोह अग्निकरि दग्ध होता जगतमें एक दिगम्बर मुनि ज्ञानरूप जलकरि मोहरूप अग्निकू बुझाय आत्मकल्याणकू करै है, धन्य हैं जे कामकू मारि, रागद्वेष का परिहार करि, इन्द्रियनिकू जीत आत्माकै हित म उद्यमी भये हैं, ये लोकोत्तर गुणनिकै धारक हैं मेरे ऐसे गुणवतनिका चरण निका ही शरण होहू ऐसे गुणनिमें परिणाम वैयावृत्यतें ही होय हैं। अर जैसे जैसे गुणनिमें परिणाम राचे, तैसें तैसें श्रद्धान बधै है। श्रद्धान बधै तदि धर्ममें प्रीति बधै, तदि धर्मके नायक अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी के गुणनिमें अनुरागरूप भक्ति बधै है। कैसीक भक्ति होय है जो 'माया चार रहित मिथ्यात्वरहित, भोगनिकी वाछरहित, अर मेरु की ज्यां निष्कंप अचल ऐसी जिनभक्ति जाकै होय ताके संसार के परिभ्रमण का भय नाहीं रहै है। सो भक्ति धर्मात्मा की वैयावृत्यतें होय है।

बहुरि पंच महाव्रतनिकरि युक्त अर कषाय करि रहित रागद्वेषका जीतनेवाला श्रुतज्ञानरूप रत्ननिका निधान ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्य करनेवालेके होय है। जो रत्नत्रयधारी का वैयावृत्य किया सो रत्नत्रयसू अपना जोडयाथि आपकू अर अन्यकू मोक्ष मार्ग म स्थापै है। बहुरि वैयावृत्य अन्तरंग-बहिरंग दोऊ तपनिमें प्रधान, कर्मकी निर्जराका प्रधान कारण है। जो आचार्य की वैयावृत्य कीयो सो समस्त संघको, सर्व धर्मको वैयावृत्य कियो, भगवानकी आज्ञा पाली, अर आपके अर परके संयमकी रक्षा, शुभध्यानकी वृद्धि, अर इन्द्रियनिका निग्रह किया। रत्नत्रय की रक्षा अर अतिशयरूप दान दिया, निर्विचिकित्सा गुणकू प्रकट दिखाया, जिनेन्द्रधर्मकी प्रभावना करी। धन खर्च देना सुलभ है रोगी की टहल करना दुर्लभ है। अन्यका औगुण ढकना, गुण, प्रकट करना, इत्यादिक गुणनिके प्रभावतैं तीर्थङ्कर नाम प्रकृतिका बन्ध करै है। यो वैयावृत्य जगत में उत्तम है, ऐसी जिनेन्द्रकी शिक्षा है। जो कोऊ श्रावक वा साधु वैयावृत्य करै है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकू पावै है। बहुरि जो अपना सामर्थ्यप्रमाणकू कायके जीवनिकी-रक्षा म- सावधान है ताके समस्त प्राणीनिका वैयावृत्य होय है। ऐसे वैयावृत्य नाम नवमी भावना ॥९॥

१० अरहन्त भक्ति भावना

अब अरहन्तभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करै है। जो मनवचनकाय करिकैं जिन ऐसे दोय अक्षर सदाकाल स्मरण करै है सो अरहन्तभक्ति है।

भावार्थ—अरहन्तके गुणनिमें अनुराग सो अरहन्त भक्ति है। जो पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई है सो तीर्थङ्कर होय अरहन्त होय है। ताकै तो षोडशकारण नाम भावनातैं उपज्या अद्भुत पुण्य, ताके प्रभावतैं गर्भ में आवनेके छह महीने पहली इन्द्र की आज्ञातैं कुबेर है सो बारहयोजन लम्बी, नवयोजन चौडी रत्नमय नगरी रचै है। तिसके मध्य राजाके रहने का महलनिका वर्णन, अर नगरीकी रचना, अर बड़े द्वार, अर कोट खाई परकोट इत्यादिक रत्नमई जो कुबेर रचै है ताकी महिमा तो कोऊ हजार जिह्वानिकरि वर्णन करनेहू समर्थ नाहीं है। तहां तीर्थङ्करकी माताका गर्भका शोधना अर रुचकद्वीपादि में निवास करनेवाली छप्पन कुमारिका देवी माता की नाना प्रकार की सेवा करने में सावधान होय है। अर गर्भ के आवनेके छह महीना पहली प्रभात, मध्याह्न अर अपराह्न एक-एक काल में आकाशतैं साढा तीनकोटि रत्ननिकी वर्षा कुबेर करै है। अर पाछैं गर्भ में आवतैं ही इन्द्रादिक च्यार निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होनेतैं

च्यारि प्रकार के देव आय, नगरकी प्रदक्षिणा दय, माता पिता की पूजा सत्कारादिकरि अपने स्थान जाय हैं।

अर भगवान तीर्थङ्कर स्फटिकमणिका पिटारासमान मलादिरहित माताका गर्भमें तिष्ठैं हैं। अर कमलवासिनी छह देवी अर छप्पन रुचिकद्वीपमें बसने वाली अर और अनेक देवी माताकी सेवा करै हैं। अर नव महीना पूर्ण होते उचित अवसर में जन्म होते ही च्यारों निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होना, अर वादित्रनिका अकस्मात् बाजनेतैं जिनेन्द्रका जन्म जानि, बड़ा हर्ष में सौधर्म नामा इन्द्र लक्षयोजन प्रमाण ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ़ि, अपना सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटल में अठारमां श्रेणीबद्ध नाम विमानतैं असंख्यातदेव अपने परिकरनिकरि सहित, साढ़ा बारा कोडिजातिका वादित्रनिका मिष्ट ध्वनि अर असंख्यात देवनिका जयजयकार शब्द, अर अनेक ध्वजा अर उत्सवसामग्री अर कोटयां अप्सरानिका नृत्यादिक उत्सव, अर कोटयां गंधर्वदेवनिका गावने करि सहित, असंख्यात योजन ऊंचा इहांतैं इन्द्र का रहनेका पटल, अर असंख्यातयोजन तिर्यक् दक्षिणदिशामें है। तहां ते जम्बूद्वीपपर्यंत असंख्यातयोजन उत्सव करते आय नगरकी प्रदक्षिणा दय, इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जाय, माताकू मायानिद्राके वशिकरि, वियोग के दुःख के भयतैं अपनी देवत्वशक्तिनैं तहां बालक और रचि, तीर्थङ्करकूं

भक्तितैं ल्याय, इन्द्रकू सौंप है। तिसकालमैं देखता इन्द्र तृप्तताकू नाही प्राप्त होता, हजार नेत्र रचिकरि दर्शै है। फिर तहा, ईशानादिक, स्वर्गनिके इंद्र अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषीनिके इंद्रादिक, असंख्यात देव अपनी अपनी सेना वाहन परिवार सहित आवैं हैं। तहा, सौधर्म इंद्र, ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ्या भगवानकू गोद में लेय चालै। तहा, ईशानइंद्र छत्र धारण करै, अर सनत्कुमार महेंद्र चमर ढारते अन्य असंख्यात अपने अपने नियोग में सावधान बड़ा उत्सवतैं, मेरुगिरिका पांडुकवनमे पांडुक शिला ऊपरि अकृत्रिम सिंहासन है, तिस ऊपरि जिनेंद्रकू पधराय है। अर पांडुकवनतैं क्षीरसमुद्र पर्यंत दोऊ तरफ देवोंकी पंक्ति बध जाय है।

क्षीरसमुद्र मेरु की भूमितैं पांच क्रोड दस लाख साढा गुनचास हजार योजन परै है। तिस अवसर मे मेरु की चूलिकातैं दोऊ तरफ मुकुट कुण्डल हार कंकणादि अद्भुत रत्ननकि के आभरण पहरैं देवनिकी पांत मेरुकी चूलिकातैं क्षीरसमुद्र पर्यन्त श्रेणी बध हैं, अर हाथू हाथ कलश सौंपै है। तहा दोऊ तरफ इन्द्रके खड़े रहने के अन्य दोय छोटे सिंहासन ऊपरि सौधर्म ईशान इन्द्र कलश लेय अभिषेक एक हजार आठ कलशनिकरि करै है। तिन कलशनिका मुख एक योजनका, उदर चारि योजन चौड़ा, आठ योजन ऊंचा, तिन कलशनितैं निकसी धारा भगवान

के वज्रमय शरीर ऊपरि पुष्पनिकी वर्षा समान [illegible] नहीं करै है। अर पाछे इन्द्राणी। कोमल वस्त्रतैं [illegible] जन्मकू कृतार्थ मानती स्वर्गतैं न्यारे [illegible] आभरण वस्त्र पहरावैं हैं। तहां अनेकदेव अनेक [illegible] विस्तारे हैं। तिनकू लिखनेकू कोऊ समर्थ नाहीं। [illegible] मेरुगिरितैं पूर्ववत् उत्सव करते जिनेन्द्रकू [illegible] समर्पण कर इन्द्र वहां ताण्डवनृत्यादिक [illegible] तिन समस्त उत्सवनिकू कोऊ असंख्यातअसंख्यात [illegible] जिह्वानिकरि वर्णन करनेकू समर्थ नाहीं है।

जिनेन्द्र जन्मतैं ही तीर्थङ्कर प्रकृतिके [illegible] दश अतिशय जन्मते लिये ही उपजैं हैं। [illegible] होय, मल मूत्र कफादिक रहितपना, [illegible] रुधिर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, अतुल अप्रमाण रूप, महासुगन्धशरीर, [illegible], एक हजार आठ लक्षण, प्रियहितमधुर वचन [illegible] पूर्वजन्मम षोडशकारण भावना भाई [illegible] है। बहुरि इन्द्र अंगुष्ठमें स्थाप्या अमृत [illegible], मातासे स्तनमें उपज्या दुग्धपान नाहीं [illegible] है। फिर अपना अवस्थाके समान बने देवकुमारनिकै [illegible] बुद्धिकू प्राप्त होय है। अर स्वर्ग [illegible] आभरण भोजनादिक मनोवांछित [illegible] हाजिर रहे हैं। पृथ्वीलोकमें [illegible]

नाही अङ्गीकार करै हैं, स्वर्गतैं आये ही भोगैं हैं। बहुरि कुमारकाल व्यतीत करि, इन्द्रादिकनिकरि कीये अद्भुत उत्साह करि, भक्तिपूर्वक पिताकरि समर्पण किया राज्य भोगि अवसर पाय, संसार देह भोगनितैं विरागता उपजै, तदि अनित्यादि बारह भावना भावतेही लौकांतिकदेव आय वन्दना स्तवनरूप सम्बोधनादिक करैं हैं। अर जिनेन्द्र का विराग भाव होते ही चारि निकायके इन्द्रादिकदेव अपने आसन कम्पायमान होनेतैं जिनेन्द्र के तपका अवसर अवधिज्ञानतैं जानि, बडे उत्सवतैं आय, अभिषेक करि, देवलोकके वस्त्राभरणतैं भक्तितैं भूषित करि, रत्नमयी पालकी रचि, जिनेन्द्रकू चढाय, अप्रमाण उत्सव अर जयजयकार शब्दसहित तपके योग्य वनमें जाय उतारैं हैं। तहां वस्त्र आभरण समस्त त्यागै, देव अधर झेलि मस्तक चढावै। अर पचमुष्टीलोंच सिद्धनिकू नमस्कारकरि करै। तदि केशनिकू महा उत्तम जाणि इन्द्र रत्नके पात्रमें धारणकरि क्षीरसमुद्रमें बड़ी भक्तितैं क्षेपै है।

जिनेन्द्र केतेक कालमें तपके प्रभावतैं, शुक्लध्यानके प्रभावतैं क्षपक श्रेणीमें घातियाकर्मनिका नाश करि केवलज्ञानकू उत्पन्न करैं हैं तदि अरहन्तपना प्रगट होय है। तदि केवलज्ञान रूप नेत्रकरि भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यनिकी अनन्तानन्त परिणतिसहित अनुक्रमतैं एक समयमें युगपत् समस्तकू जानै है देखै

है। तदि च्यारि निकायके देव ज्ञानकल्याण की पूजा स्तवन करि भगवानका उपदेशके अर्थि समवसरण अनेक रत्नमय रचैं हैं। तिस समवसरण की विभूतिका वर्णन कौन कर सकै? पृथ्वीतैं पाच हजार धनुष ऊंचा, जाके बीस हजार पैडी, तीं ऊपरि इन्द्रनीलमणिमय गोल भूमि बारह योजन प्रमाण, तिस ऊपरि अप्रमाण महिमामहित समवसरण रचना है। जहा समवसरण रचना होय है, अर भगवानका विहार होय है तहां अन्धनिकू दीखने लगि जाय, बहरे श्रवण करने लगि जाय, लूले चालने लगि जाय हैं। गूंगे बोलने लगि जाय हैं। वीतराग की अद्भुत महिमा है।

जाके धूलिशालादिक रत्नमय कोट, मानस्तम्भ, अर वावड्या, अर जलकी खातिका, अर पुष्पवाड़ी, फिर रत्नमय कोट, दरवाजे, नाटयशाला, उपवन, वेदी, भूमि, फिर कोट फिर कल्पवृक्षनिका वन, रत्नमयस्तूप, फिर रत्नमय भूमि, फिर स्फटिकका कोटमें देवच्छद नाम एक योजन का मडप, सर्व तरफ द्वादस सभा, तिनकरि सेवित रत्नमय तीन कटनी, गंधकुटी में सिंहासन ऊपरि च्यारि अंगुल अतरीक्ष विराजमान भगवान अरहंत हैं। जिनकी अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतवीर्य, अनतसुखमयी अतरंग विभूतिकी महिमा कहनेकू च्यारि ज्ञान के धारक गणधर समर्थ नाहीं, अन्य कौन कहि सकै? अर समवसरणकी विभूति ही वचनके अगोचर है। अर गंधकुटी तीसरी कटनी

ऊपरी है। तहां चउसठि चमर बत्तीस युगल देवनिक मुकुट कुंडल हार कडा मुनबधादिक समस्त आभरण पहिरे ढालि रहे हैं। तीन छत्र अद्भुत कांति के धारक, जिनकी कांतितैं सूर्य चन्द्रमा मदज्योति भासैं हैं, अर जिनकी देहका प्रभामडलको चक्र बध रह्या जाकरि समवसरण में रात्रिदिन को भेद नाहीं रहै है, सदा दिवस ही प्रवर्तै है। अर महासुगध—त्रैलोक्य में ऐसा सुगध और नाहीं, ऐसी गधकुटी के ऊपर देवनिकरि रच्या अशोकवृक्ष देखते ही समस्त लोकनिका शोक नष्ट हो जाय। अर कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा आकाशतैं होय है। अर आकाश में साढाबाराकोटि जाति के वादित्रनिकी ऐसी मधुर ध्वनि होय है जिनके श्रवणमात्रतैं क्षुधातृषादिक समस्त रोग वेदना नष्ट हो जाय है। अर रत्नजडित सिंहासन सूर्य की कांतिकू जीतै है।

बहुरि जिनेन्द्र की दिव्यध्वनिकी अद्भुत महिमा है। त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके परम उपकार करने वाली मोहअध कारका नाश करै है अर समस्त जीव अपनी अपनी भाषा में शब्द अर्थ ग्रहण करै हैं, अर समस्त जीवनि के सशय नाहीं रहै है, स्वर्ग-मोक्षका मार्गकू प्रगट करै हैं। दिव्य ध्वनिकी महिमा वचन द्वारा गणधर इन्द्रादिक कहनेकू समर्थ नाहीं है। जिनके समवसरण में सिंह अर गज, व्याघ्र अर गौ, मार्जारी अर हंस इत्यादिक जातिविरोधी

च्यार निकायके देवनिकरि जयजय शब्द, एक हजार आराकरिसहित किरणनिका धारक, अपना उद्योतकरि सूर्यमण्डलकू तिरस्कार करता धर्मचक्र आगे आगे चालै, अष्ट मङ्गलद्रव्य ये चौदह देवकृत अतिशय प्रकट होय हैं। क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष मोह अरति चिंता स्वेद खेद मद निद्रा इन अष्टादश दोषनिकरि रहित अरहंत तिनको वंदना स्तवन ध्यान करो। या अरहंतभक्ति संसारसमुद्रका तारनेवाली, निरन्तर चितवन करो। सुखका करनेवाला अरहंत ताका स्तवन करो। याका गुणनिके आश्रय तो अनंत नाम हैं। अर भक्तिका भरया इन्द्र भगवानका एक हजार आठ नामकरि स्तवन किया है। अर जे अल्प सामर्थ्यके धारक हैं ते हू अपनी शक्तिप्रमाण पूजन स्तवन नमस्कार ध्यान करो। अरहंत भक्ति संसारसमुद्रको तारने वाली है। सम्यग्दर्शनमें अर अरहंतभक्तिमें नामभेद है, अर्थभेद नाहीं है। अरहंतभक्ति नरकादिगतिकू हरनेवाली है। या भक्तिको पूजनस्तवन करि अर्घ उतारण करे हैं सो देवका सुख, फिर मनुष्यका सुख भोगि, अविनाशी सुखका धारक अक्षय अविनाशी सुखकू प्राप्त होय हैं। ऐसे अरहंतभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करी ॥१०॥

११ आचार्य भक्ति भावना

अब आचार्य भक्ति नाम ग्यारमीभावना वर्णन करे

हैं। सो ही गुरुभक्ति है। धन्यभाग जिनका होय तिनकू वीतराग गुरुनिके गुणनिमें अनुराग होय है। धन्यपुरुष निके मस्तक उपरि गुरुनिकी आज्ञा प्रवर्ते है। आचार्य हैं सो अनेक गुणनिकी खानि हैं। श्रेष्ठतपका धारक हैं। यातैं इनका गुण मनविषै धारणकरि पूजिये, अर्घ उतारण करिए, पुष्पांजलि अग्रभागमें क्षेपिये, जो मेरे ऐसे गुरुनिका चरणनिका शरण ही होहू। कैसेक हैं आचार्य? जिनके अनशनादिक बारह प्रकारका उज्ज्वल तपनिमें, निरंतर उद्यम है, अर छह आवश्यक क्रियामें सावधान हैं, अर पंचाचारके धारक हैं, अर दशलक्षणधर्म रूप है परिणति जिनकी, अर मनवचनकायकी गुप्ति करि सहित हैं, ऐसे छत्तीसगुणनिकरि युक्त आचार्य होय हैं। अर सम्यग्दर्शनाचारकू निर्दोष धारे हैं। अर सम्यग्ज्ञानकी शुद्धताकरि युक्त हैं। अर त्रयोदशप्रकार चारित्रकी शुद्धताके धारक अर तपश्चरणमें उत्साहयुक्त, अर अपने वीर्यकू नाहीं छिपावते बाईस परीषहनिके जीतनेमें समर्थ, ऐसे निरन्तर पंच आचार के धारक हैं। अंतरङ्ग बहिरङ्ग ग्रंथकरि रहित, निर्ग्रंथ मार्गके गमन करने में तत्पर हैं, अर उपवास बेला तेला पंचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास करने में तत्पर हैं। अर निर्जनवनमें अर पर्वतनिके दराडे, अर गुफानिके स्थानमें निश्चल शुभध्यान में मनकू धारे हैं। अर शिष्यनिकी योग्यताकू आछी रीतिसू जानि दीक्षा

देनेम अर शिक्षा करनेमें निपुण हैं; अर युक्तिनें नय प्रकार नयके जाननेवाले हैं, अर अपनी कायसू ममत्व छांडि रात्रिदिन तिष्ठे हैं। संसाररूपमें पतन हो जानेतें भयवान हैं। मनवचनकायकी शुद्धतायुक्त नासिकाका अग्रमें स्थापित किये हैं नेत्रयुगल जिनूने ऐसे आचार्यकू, समस्त अङ्ग निकू, पृथ्वीमें नमाय मस्तक धारि वंदना करिये। तिन आचार्यनिका चरणनिकरि स्पर्श भई पवित्र रजकू अष्ट द्रव्यनि करि पूजिये सो संसार परिभ्रमणका क्लेश पीड़ाकू नष्ट करनेवाली आचार्य भक्ति है।

अब यहां ऐसा विशेष जानना.—जो आचार्य है सो समस्तधर्मक नायक हैं। आचार्यनिकू आधार समस्त धर्म है। यातें एते गुणनिके धारक ही आचार्य होय। बड़ा राजानिका या राजाके मन्त्रीनिका या महान श्रेष्ठीनिका कुलमें उपज्या होय, अर जाके स्वरूपकू देखते ही शांत परिणाम हो जांय, ऐसा मनोहररूपका धारक होय, जिनका उच्च आचार जगतमें प्रसिद्ध होय, पूर्व गृहचारामें भी कदे हीण आचार निंद्य व्यवहार नाहीं किया होय, अर वर्तमान भोगसम्पदा छांडि विरक्तताकू प्राप्त भया होय, अर लौकिक व्यवहार अर परमार्थके ज्ञाता होय, अर बुद्धिकी प्रबलतो अर तपकी प्रबलता का धारक होय, अर संघ के अन्य मुनीश्वरनितें ऐसा तप नाहीं बनि सकै तैसा तपका धारक होय, बहुत कालका दीक्षित होय, बहुत

काल गुरुनिका चरणसेवन किया होय, वचनका अतिशय-सहित होय, जिनका वचन श्रवण करतें ही धर्ममें दृढता, अर संशयका अभाव, अर संसार देहभोगतें विरागता जाके निश्चल होय, सिद्धान्तसूत्रके अर्थका पारगामी होय, इन्द्रियनिका दमनकरि इहलोक परलोकसम्बन्धी भोग विलासरहित, देहादिकमें निर्ममत्व होय, महाधीर होय, उपसर्गपरीषहनिकरि कदाचित् जाका चित्त चलायमान नाहीं होय। जो आचार्य ही चलि जाय तो सकल संघ भ्रष्ट होजाय, धर्मका लोप होजाय। स्वमत परमतका ज्ञाता होय, अनेकान्तविद्यामें क्रीडा करनेवाला होय, अन्यके प्रश्नादिकतें कायरतारहित तत्काल उत्तर देनेवाला होय। एकान्तपक्षकू खण्डन करि सत्यार्थधर्मकू स्थापन करनेका जाका सामर्थ्य होय, धर्मकी प्रभावना करनेमें उद्यमी होय, गुरुनिका निकट प्रायश्चित्तादिकसूत्र पढि छत्तीस गुणनिका धारक होय है सो समस्त संघकी साक्षिसू गुरुनिकरि दिया आचार्यपद प्राप्त होय। एते गुणनिका धारक होय तिसहीकू आचार्यपना होय है। एते गुणनि बिना आचार्य होय तो धर्म तीर्थका लोप होजाय, उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय, समस्तसंघ स्वेच्छाचारी होजाय, सूत्रकी परिपाटी अर आचारकी परिपाटी टूटि जाय।

बहुरि आचार्यपनाके अन्य अष्ट गुण हैं धारक होय। आचारवान्, आधारवान्,

प्रवर्त्ता, अपायोपाय विदर्शी, अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्यापक, ए आठ गुण हैं। तिनम पचप्रकारका आचार धारण करै ताकू आचारवान कहिये। जीवादिकतत्त्व भगवान सर्वज्ञ वीतराग दिव्य निरावारण ज्ञानकरि प्रत्यक्ष देखि कह्या तिनम श्रद्धानरूप परिणति सो दर्शनाचार है। स्वपरतत्त्वनिकू निर्बाध आगम अर आत्मानुभव करि जाननारूप प्रवृत्ति सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पच पापनिका अभाव रूप प्रवृत्ति सो चारित्राचार है। अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तपमें प्रवृत्ति सो तपाचार है परीषहादिक आए अपनी शक्तिकू नाहीं छिपाय धीरतारूप प्रवृत्ति सो वीर्याचार है, तथा औरहू दश प्रकार स्थितिकल्पादिक आचारमें तत्पर हो। समितिगुप्त्यादिकनिका कथन करिये तो बहुत कथन बधि जाय। पचप्रकार आचार आप निर्दोष आचरै, अर अन्य शिष्यादिकनिकू आचरण करावने म उद्यमी होय सो आचार्य है। आप हीणाचारी होय सो शिष्यनिकू शुद्ध आचरण नाहीं कराय सकै। हीणाचारी होय सो आहार विहार उपकरण वस्तिका अशुद्ध ग्रहण कराय दे अर आपही आचारहीन होय सो शुद्ध उपदेश नाहीं करि सकै। तातैं आचार्य आचारवान ही होय ॥१॥

बहुरि जाके जिनेन्द्रका प्ररूप्या च्यार अनुयोग का आधार होय, स्याद्वाद विद्याका पारगामी होय, शब्दविद्या सिद्धान्तविद्याका पारगामी होय, प्रमाण नय निक्षेपकरि

स्वानुभवकरि भले प्रकार तत्त्वनिका निर्णय किया होय सो आधारवान है। जाके श्रुतका आधार नाहीं सो अन्य शिष्यनिका संशय तथा एकान्तरूप हठ तथा मिथ्याचरणकू निराकरण नाहीं करि सकै। बहुरि अनन्तानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जीवकू अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मका पावना तामें हू उत्तम देश जाति कुल, इन्द्रिय-पूर्णता, दीर्घायु, सत्संगति, श्रद्धान, ज्ञान आचरण ये उत्तरोत्तर दुर्लभ संयोग पाय, तो अल्पज्ञानी गुरुकू निकट रमनेवाला शिष्य, सो सत्यार्थ उपदेश नाहीं पावनतैं यथार्थ आपका स्वरूप नाहीं पाय, संशयरूप हो जाय, तथा मोक्षमार्गकू अतिदूर अतिकठिन जानि, रत्नत्रयमार्गतैं चलिजाय, तथा सत्यार्थ उपदेश बिना विषय कषायनिमें उरझा मनकू निकासनेमें समर्थ नाहीं होय, तथा रोगकृत वेदनाम तथा घोर उपसर्ग परीषहनितैं घब्या हुआ परिणामकू श्रुतका अतिशयरूप उपदेशबिना थांभनकू समर्थ नाहीं होय है। बहुरि मरण आजाय तदि सन्यासका अवसरमें आहार-पानका त्यागका यथा अवसर देशकाल सहाय सामर्थ्यका क्रमकू समझे बिना शिष्यका परिणाम चलि जाय वा आर्तध्यान होजाय तो सुगति बिगडि जाय, धर्मका अपवाद हो जाय, अन्य मुनि धर्ममें शिथिल होजाय, तो बडा अनर्थ है।

तथा यो मनुष्य आहारमय है, आहारतैं जीवै है, आहारहीकी निरन्तर वाछा करै है अर जब रोगके वशतैं

तथा त्याग करने आहार छूटि जाय तदि, दुःखकरि ज्ञान चारित्रमें शिथिल होय, धर्मध्यानरहित हो जाय, तो बहुश्रुत गुरु ऐसा उपदेश करैं जाकरि क्षुधा तृषाकी वेदना-रहित होय, उपदेशरूप अमृतकरि सींचा हुआ समस्त क्लेशरहित भया, धर्मध्यानमें लीन होजाय है। क्षुधा तृषा रोगादिककी, वेदनारहित शिष्यकू धर्मका उपदेशरूप अमृतका पान अर शिक्षारूप भोजनकरि, ज्ञानसहित गुरुही वेदनारहित करै। बहुश्रुतिका आधारविना धर्म रहै नाहीं। तातैं आधारवान आचार्य होय ताहीका शरण ग्रहण करना योग्य है। बहुरी जो शिष्य वेदनाकरि दुःखित होय ताके हस्त पाद मस्तकका दाबना, स्पर्शनादि करना, मिष्टवचन कहना इत्यादिक करि दुःख दूर करैं तथा पूर्वे जे अनेक साधु घोरपरीषह सहकरि आत्मकल्याण किया तिनकी कथा के कहनेकरि तथा देहतैं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरि वेदनारहित करै। तथा भो मुने! अब दुःख में धैर्य धारण करो, संसार में कौन २ दुःख नाहीं भोगे? अब वीतराग का शरण- ग्रहण- करोगे तो दुःखनिका नाश करि कल्याणकू प्राप्त होवोगे इत्यादिक बहुत प्रकार कहि मार्गकू नाहीं चलने देवै तातैं आधारवान गुरुनिही शरण योग्य है ॥२॥

बहुरि जो व्यवहार प्रायश्चित्तसूत्रनिका ज्ञान होय। जातैं प्रायश्चित्तसूत्र आचार्य होने योग्य होय, तिसहीकू

पढावै है औरनिके पढ़ने योग्य नाहीं। जो जिनआगमका ज्ञाता अर महाधैर्यवान प्रबलबुद्धिका धारक होय सो प्रायश्चित्त देवै है। अर द्रव्य क्षेत्र काल भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, सहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल अर शास्त्रज्ञान, पुरुषार्थादिक आछी रीति जाणि, रागद्वेषरहित होय सो प्रायश्चित्त देवै है।

भावार्थ—जाम ऐसी प्रवीणता होय जो याकू ऐसा प्रायश्चित्त दिये याका परिणाम उज्ज्वल होयगा, अर दोषका अभाव होयगा, व्रतनिमें दृढता होयगी, ऐसा ज्ञाता होय जाके आहारकी योग्यता अयोग्यताका ज्ञान होय, तथा या क्षेत्रमे ऐसा प्रायश्चित्त का निर्वाह होयगा या या क्षेत्रमें निर्वाह नाहीं होयगा तथा इस क्षेत्रमे वात पित्त कफ शीत उष्णताकी अधिकता है कि हीनता है कि समपना है, अथवा इस क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टिनिकी अधिकता है कि मदता है, तथा धर्मात्मानि की हीनता अधिकताकू जाणि प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै। बहुरि शीत उष्ण वर्षा कालकू तथा अवसर्पिणी उत्सर्पिणीका तृतीय चतुर्थ पचम कालादिक कथावीन प्रायश्चित्तका निर्वाह देखैं। बहुरि परिणाम देखैं तथा तपश्चरण में याकू तीव्र उत्साह है कि मद है ताकू देखै। बहुरि सहननकी हीनता अधिकता तथा बलकी मदता तीव्रता देखै। तथा ये बहुत कालका दीक्षित है कि नवीन दीक्षित है, तथा सहनशील है कि कायर है, सो

देखै। तथा बाल युवा वृद्ध अवस्थाकू देखे। बहुरि आगमका ज्ञाता है कि मदज्ञानी है सो देखै। तथा पुरुषार्थी है कि निरुद्यमी है इत्यादिक का ज्ञाता होय प्रायश्चित्त देवै। जैसे दोषरूप फिर आचार नाहीं करै अर पूर्वछव दोष दूरि होय तैसे सूत्रके अनुकूल प्रायश्चित्त देवै। जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र शब्दतैं अर्थतैं पढ्या नाहीं औरनिकू प्रायश्चित्त देवै है सो संसाररूप कर्दममें डूबै है, अर अपयशकू उपार्जन करै है तथा उन्मार्गका उपदेशकरि सम्यक् मार्गका नाशकरि मिथ्यादृष्टि होय है। जो एते गुणका धारक होय ताकू प्रायश्चित्तसूत्र पढाय गुरु अपना आचार्यपद दे है।

जो महाकुलमें उपज्या व्यवहार परमार्थ का ज्ञाता होय, कोऊ कालमहू अपने मूलगुणनिमें अतिचार नाहीं लगाया होय, च्यारि अनुयोगसमुद्रका पारगामी होय, धैर्यवान होय, कुलवान होय, परीषह जीतने में समर्थ होय, देवनिकरि कीया उपसर्गतैं हू जो चलायमान नाहीं होय, वक्तापना की शक्तिका धारक होय, वादीप्रतिवादीनिके जीतनेमें समर्थ होय, विषयनितैं अत्यन्त विरक्त होय, बहुतकाल गुरुकुल सेया होय, सर्व संघके मान्य होय, पहिले ही समस्त संघ जाकू आचार्यपनाकी योग्यता जाणै सोही गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त सूत्रका ज्ञाता होय आचार्यपना पावै, सो प्रायश्चित्त देवे। एते गुणनि विना

जैसे मूढ़ वैद्य देश काल प्रकृत्यादिक नाहीं जानै तो रोगी कू मारै है तैसें व्यवहार सूत्ररहितमूढ़ गुरू हू संसार में डुबोवैं। तातैं व्यवहारवान ही आचार्य होय हैं।

बहुरि आचार्य प्रकर्षा गुण संयुक्त होय है। उनकैं कोऊ रोगी होय, वा वृद्ध होय, अशक्त होय, कोऊ बाल होय, कोऊ सन्यास धारण किया होय तिनका वैयावृत्य म युक्त किये जे मुनि ते टहल करैं ही परंतु आप आचार्य हू संघके मुनीश्वरनिमें जो अशक्त होजाय तासू उठाय बैठावना, शयन करावना तथा मलमूत्रकफादिक तथा रुधिरादिक शरीरतैं दूरि करना, धोवना, [illegible] शुद्ध भूमिमें स्थापना, धर्मोपदेश [illegible], [illegible] इत्यादिक आदरपूर्वक भक्तितैं वैयावृत्य करैं। तिनकू देखि समस्त संघके मुनि वैयावृत्यमें [illegible] होय हैं— अहो धन्य हैं ये गुरु [illegible] जिनके धर्मात्मामें वात्सल्य है। [illegible] होय रहे हैं, हमकू होने [illegible] हैं। यह [illegible] प्रमादीपना धिक्कारने योग्य है, [illegible] है, ऐसा विचार समस्त संघ वैयावृत्य में [illegible] होय है। जो आचार्य आप प्रमादी [illegible] वात्सल्यरहित होजाय। तातैं आचार्य [illegible] है। समस्त संघको वैयावृत्य [illegible] होय सो आ[illegible] होय है। [illegible] शुद्ध

ग्रहण करावै, कोऊ मन्दज्ञानी होय तिनकू समझाय चारित्रमें लगावै, केइनिकू प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै, कोऊकू धर्मोपदेश देय दृढता करै। धन्य है! आचार्य तिनके शरणे प्राप्त होगया तिनकू मोक्षमार्ग में लगाय उद्धार करै हैं। यातैं आचार्यका प्रवर्त्ता नामा गुण प्रधान है ॥ ४ ॥

बहुरि अपायोपायविदर्शी नामा पांचमो गुण है। कोऊ साधु क्षुधा तृषा रोग वेदनाकरि पीड़ित हुआ क्लेशित परिणामरूप हो जाय, तथा तीव्र रागद्वेषरूप होजाय, तथा लज्जाकरि भयकरि यथावत् आलोचना नाहीं करै, तथा रत्नत्रय में उत्साह रहित होजाय, धर्मम शिथिल हो जाय ताकू अपाय मानि रत्नत्रय का नाश अर उपाय, रत्नत्रय की रक्षानिका प्रगट गुण दोष ऐसा दिखावै जो रत्नत्रयका नाश होनेतैं कषायमान हो जाय, अर रत्नत्रयका नाशतैं अपना नाश अर नरकादि कुगति में पतन साक्षात् दिखावै, अर रत्नत्रय की रक्षातैं संसारतैं उद्धार होय अनन्त सुखकी प्राप्ति होय, सो अपायोपाय विदर्शी नाम गुणका धारक आचार्य होय है। इहां उपदेश दिखाये कथन बहुत होजाय तातैं नाहीं लिख्या ॥ ५ ॥

अब अवपीडक नाम छठा गुण कहिये है। कोऊ मुनि रत्नत्रय धारण करकै हू लज्जाकरि, भयकरि अभिमान [illegible] रि अपनी आलोचना यथावत् शुद्ध नाहीं करै

तो आचार्य ताकू स्नेहकी भरी, कर्णनिकू मिष्ट अर हृदय म प्रवेश करनेवाली शिक्षा करैं जो हे मुने ! बहुत दुर्लभ रत्नत्रयका लाभ ताकू मायाचारकरि नष्ट मति करो। माता पिता समान गुरुनक निकट अपने दोष प्रगट करने म कहा लज्जा है ? अर वात्सल्यके धारक गुरु हू अपने शिष्यक दोष प्रगट करि शिष्यका अर धमका अपवाद नाहीं करावै है। तातैं शल्य दूरि करि आलोचना करो। जैसे रत्नत्रयकी शुद्धता अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा तैसैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावक अनुसार प्रायश्चित्त तुमकू दिया जायगा। तातैं भय त्यागि आलोचना निदाप करहू। एसे स्नेह रूप वचन करिक जोहू माया शल्य नाहीं त्यागै तो तेजका धारक आचार्य शिष्यकी शल्यकू जबरीतैं निकासै। जिस काल आचार्य शिष्यकू पूछै हैं, जो हे मुने ! ये दोष एसैं ही हैं सत्यार्थ कहो। तदि उनके तेज तपके प्रभावतैं जैसे सिंहकू देखते ही स्याल खाया हुआ मासकू तत्काल उगलै है, तथा जैसे महान प्रचण्ड तेजस्वी राजा अपराधीकू पूछै तदि तत्काल सत्य कहता ही बणै, तैसै शिष्यहू मायाशल्यकू निकासै है। अर मायाचार नाहीं छाडे तो गुरु तिरस्कारक वचन हू कहै हैं हे मुने ! हमारे सघतैं निकसि जाहु, हमकरि तुम्हारे कहा प्रयोजन है। जो अपना शरीरादिक का मेल धोया चाहैगा सो निर्मल जलके भरे सरोवरकू प्राप्त होयगा।

जो अपना महान रोगकू दूरि किया चाहैगा सो प्रवीण वैद्यकू प्राप्त होयगा। तैसैं जो रत्नत्रयरूप परमधर्मका अतीचार दूरि करि उज्ज्वलता किया चाहैगा सो गुरुनिका आश्रय करेगा। तुम्हारे रत्नत्रयकी शुद्धता करनेमें आदर नाहीं तातैं ये मुनिपणा व्रत धारण, नग्न होय क्षुधादि परीषह सहनेकी विडंबनाकरि कहा साध्य है। संवर निर्जरा तो कषायनिके जीतनेतैं है, मायाकषायका ही त्याग नाहीं किया तदि व्रत संयम मौन धारण वृथा है। नग्नता, अर परीषह सहनता मायाचारी का वृथा है। तिर्यंच हू परिग्रहरहित नग्न रहै ही है। यातैं तुम दूर भव्य हो, हमारे वंदनेयोग्य नाहीं हो। अर तुम्हारे परिणाम ऐसैं हैं जो हमारा दोष प्रगट होय तो हम निंद्य होय जावें, हमारा उच्चपणा घटि जाय, सो ऐसा मानना वधका कारण है। श्रमण तो स्तुति निन्दामें समानपरिणामी होय हैं। ऐसे गुरु कठोर वचन कहि करके हू मायाचारादिक अभाव करावैं। कैसा होय अवपीडक आचार्य? जो बलवान होय, उपसर्ग परीषह आये कायर नाहीं होय, प्रतापवान होय, जाका वचन 'कोऊ उल्लंघन' करने समर्थ नाहीं होय, अर प्रभाववान होय जाकू देखतेप्रमाण दोषका धारक साधु कांपने लगि जाय, जाकू बडे २ विद्याके धारक नम्रीभूत होय वंदना करैं, जाकी उज्ज्वल कीर्ति विख्यात होय, जाकी कीर्ति सुनता ही जाके गुणनिमें दृढ़ श्रद्धा हो

जाय, जाका वचन जगतमें दस्या विना ही दूरदेशांतिमें प्रमाण करै, सिंहकी ज्यों निर्भय होय ऐसा अवपीड़क गुणका धारक गुरु होय, सो जैसें शिष्य का हित होय तैसें उपकार करै है। जैसें बालकका हितनै चिंतवन करती माता रुदन करता हू बालकू दाबकरि, मुख फाडि, जबरीतैं घृत दुग्धादि पान करावै है, तैसे शिष्यका हितकू चिंतवन करता आचार्य हू मायाशल्यसहित चपकका बलात्कार करि दोष दूर करै है। अथवा कडुक औषधि ज्यों पश्चात् हित करै है। जो जिह्वाकरिके मिष्ट बोले अर शिष्यकू दोषतैं नाहीं छुडावै सो गुरु भला नाहीं। अर जो आचरण करि ताडना हू करि दोषनितैं भिन्न करै है सो गुरु पूजने योग्य है। यातैं अवपीडकगुणका धारक ही आचार्य होय है ॥ ६ ॥

अब अपरिस्रावी गुणकू कहैं हैं। जो शिष्य गुरुनिकू दोष आलोचना करै सो दोष अन्यकू गुरु प्रकाश नाहीं करै। जैसें तप्तायमान लोहकरि पीया जल सो बाह्य प्रकट नाहीं होय तैसें शिष्यकरि श्रवण किया दोष आचार्य हू किसी कू नाहींजणावै है, सोही अपरिस्रावी नाम गुण है। शिष्य तो गुरुका विश्वास करकै कहै, अर गुरु जो शिष्य का दोष प्रकट करै, अन्यकू जनावै तो वह गुरु नाहीं, अधम है, विश्वासघाती है। कोऊ शिष्य अपना दोषकी प्रकटता जानि दुःखित होय आत्मघात करै है वा क्रोधी होय

रत्नत्रयका त्याग करै है, तथा गुरुकी दुष्टता जानि अन्य संघमें जाय तथा जैसें हमारी अवज्ञा करी तैसें तुम्हारी हू अवज्ञा करैगा ऐसे समस्त संघ में घोषणा प्रकट होय, समस्तसंघ आचार्यनिका प्रतीतिरहित होजाय, आचार्य सब के त्याज्य होजाय इत्यादिक बहुत दोष आवैं। बहुत कहे कथनी बधि जाय, तातें अपरिस्रावी गुणका धारक ही आचार्य होय है ॥७॥

अब आचार्य निर्यापक होय। जैसें नावकू खेवटिया समस्त उपद्रवनिकू टालि नावकू पार उतारि ले जाय, तैसें आचार्यहू शिष्यकू अनेक विघ्नसू बचाय संसार समुद्रसे पार करै सो निर्यापक है ॥८॥ ऐसे आचारवान आदि आचार्यनिके अष्टगुणकू धारण करतेनिके गुणनिमें अनुराग सो आचार्य भक्ति है। ऐसें आचार्यनिके गुणनिकू स्मरण करके आचार्यनिका स्तवन वंदना करता जो पुरुष अर्घ उतारण करै है, सो पापरूप संसारकी परिपाटीकू नष्टकरि अक्षयसुखकू प्राप्त होय है, ऐसें वीतराग गुरु कहै हैं। ऐसे आचार्य भक्ति वर्णनकरी॥११॥

१२ बहुश्रुतभक्ति भावना

अब बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावनाकू कहै हैं। जो अंग-पूर्वादिकका ज्ञाता तथा च्यार अनुयोगनिका पारगामी, जो निरन्तर आप परमागमकू पढ़ै, अन्य शिष्यनिकू पढावै ते बहुश्रुती है। तथा जिनके श्रुतज्ञान ही दिव्यनेत्र हैं अर अपना अर परका हित करनेमें प्रवर्तते अर अपने जिनसिद्धान्त अर अन्य एकांतीनिके सिद्धान्तनि को विस्तारतें जानने वाले,

स्याद्वादरूप परम विद्या के धारक तिनकी जो भक्ति सो बहुश्रुत भक्ति है। बहुश्रुतीकी महिमा कौन कहनेकू समर्थ है। जे निरंतर श्रुतज्ञानका दान करै हैं ऐसेउपाध्याय तिनकी भक्ति विनयकरि सहित करै है ते शास्त्ररूप समुद्र का पारगामी होय है। जे अङ्ग पूर्व प्रकीर्णक जिनेन्द्रने वर्णन किये तिन समस्त जिनागमकू निरन्तर पढ़ै पढ़ावै ते बहुश्रुता हैं। इहां प्रथम आचाराग वर्मे अठारह हजार पदनिमें मुनिधर्मका वर्णन है। सूत्रकृताङ्ग का छत्तीस हजार पद हैं, तिनम जिनेन्द्रके श्रुतके आराधन करनेकी विनयक्रियाका वर्णन है। स्थानागका ब्यालीस हजार पदनिमें षट्द्रव्यनि का एकादि अनेक स्थानका वर्णन है। समवायांग एकलाख चौसठिहजार पदनिमें है तिनम जीवादिक पदार्थनिका द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रित समानता कावर्णन है। व्याख्या प्रज्ञप्ति अगके दोयलक्ष अट्ठाईसहजार पदनिमें जीवका अस्ति नास्ति इत्यादि गणधरनि करि कीये साठिहजारपदनिम वर्णन है। ज्ञातृधर्मकथांगके पाचलक्ष छप्पनहजारपदनिमें गणधर निकरि कियेप्रश्ननिके अनुसार जीवादिकनिका स्वभावका वर्णन है। उपासकाध्ययननाम अङ्गके ग्यारह लक्ष सत्तरहजार पदनि में श्रावकके व्रतशील आचार क्रियाका तथा यासा मन्त्रनिका उपदेशका वर्णन है। अन्तकृतदशागके तेईसलक्ष अट्ठाईसहजार पदनिमें एक २ तीर्थंकरकेतीर्थमें दश २ मुनीश्वर उपसर्गसहित निर्वाण प्राप्त भये तिनका कथन है। अनुत्तरोपपादकदशाग के बाणवैलक्ष चौवालीसहजारपदनिमें एक २ तीर्थंकर के तीर्थ में

दश २ मुनीश्वर महाभयङ्कर घोरउपसर्ग सहि देवनितें पूजा पाय विजयादिक अनुत्तर विमाननि में उपजे तिनका वर्णन है। प्रश्नव्याकरणनामअङ्ग के ब्यानवैलक्ष षोडशसहस्र पदनिमें नष्ट मुष्टि लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादिकके प्रश्नका वर्णन है। विपाकसूत्रांगक एककोटि चौरासीलक्ष पदनिमें कर्मनिका उदय उदीरणा सत्ताका वर्णन है। अर दृष्टिवाद नाम बारम अंग का पाच भेद है। परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व चूलिका-

तिनमें परिकर्मकाहू पाचभेद है। तिनमें चन्द्र प्रज्ञप्तिके छह लक्ष पांचहजारपदनिम चन्द्रमाका आयु गति अर कलाकी हानिवृद्धि अर देवीविभव परिवारादिकका वर्णन है। अर सूर्य प्रज्ञप्तिके पाचलक्ष तीन हजार पदनिमें सूर्यका आयु गति विभवादिकका वर्णन है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके तीनलक्ष पचीसहजार पदनिमे जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्र कुलाचल द्रह नदी इत्यादिकनिका निरूपण है। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिके बावनलक्ष छत्तीसहजार पदनिम असंख्यात द्वीप-समुद्रनि अर मध्यलोकके जिनभवननिका, अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क देवनिके निवासनिका वर्णन है। व्याख्याप्रज्ञप्तिके चौरासी लक्ष छप्पनहजार पदनिमें जीव पुद्गलादि द्रव्यका निरूपण है। एसे पच प्रकार परिकर्म कह्या।

अब दृष्टिवाद अङ्गका दूजा भेद सूत्रक अट्ठासी लक्ष पदनिम जीव अस्तिरूप ही है, नास्तिरूप हा है, कर्त्ता ही है, भोक्ता ही है इत्यादि एकांतवादकरि कल्पित जीवका स्वरूपका वर्णन है। बहुरि दृष्टिवादका तीजाभेद प्रथमानुयोगक पाच हजार पदनिमें तेसठि महापुरुषनिके चरित्रका वर्णन है।

अब दृष्टिवादअङ्गका चतुर्थभेदमें चौदहपूर्व हैं तिनमें उत्पादपूर्वके एककोटि पदनिमें जीवादिक द्रव्यनिका उत्पादादि स्वभावका निरूपण है ॥१॥ अग्रायणीपूर्वके छिनवै कोटि पदनिमें द्वादशांग का सारभूत सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य, सातसै सुनय दुनयादिकका स्वरूपका वर्णन है ॥२॥ वीर्यानुवादके सप्तलक्ष पदनिमें आत्मवीर्य, परवीर्य कालवीर्य भाववीर्य, तपोवीर्यादि समस्त द्रव्यगुण पर्यायनिका वीर्यका निरूपण है ॥३॥ अस्तिनास्तिप्रवाद नाम पूर्वके साठि लक्ष पदनिमें जीवादि द्रव्यनिका स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति और पर द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति इत्यादिक सप्त भङ्गादिक तथा नित्य अनित्य एक अनेकादिकनिका विरोधरहित वर्णन है ॥४॥ ज्ञानप्रवाद पूर्वके एक घाटि कोटि पदनिमें मति श्रुति अवधि मन पर्यय केवल ये पाच ज्ञान, अर कुमति कुश्रुत विभङ्ग ये तीन अज्ञान इनका स्वरूप, संख्या, विषय, फलनिके आश्रय प्रमाणपना अप्रमाणपनाका वर्णन है ॥५॥ सत्यप्रवादपूर्वके छह अधिक एककोटि पदनिमें वचनगुप्ति अर वचनके संस्कार-कारण, अर द्वादश भाषा, अर बहुत प्रकार असत्य, अर दश प्रकारके सत्यका वर्णन है ॥६॥ आत्मप्रवादपूर्वके छब्बीस कोटि पदनिमें आत्मा जीव है, कर्त्ता है, भोक्ता है, प्राणी है, वक्ता है, पुद्गल है, वेद, है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीर मान वक्ता शक्ता जन्तु

मानी मायी वियोगी अमकुट चेत्रज्ञ इत्यादि स्वरूपका वर्णन है ।७॥ कर्मप्रवादपूर्वक एककोटि अस्सी लाख पदनिम कर्मनिका बंध उदय उदीरणा सत्त्व उत्कर्षण उपशमन संक्रमण निधत्ति निकाचितादि अवस्था अर ईर्यापथ तपस्या अध कर्मादिकानका वर्णन है ॥८॥ प्रत्याख्यानपूर्वक चौरासी लक्ष पदनिमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकू आश्रय कार, पुरुषनिका सहनन, अर बलादिकनिक अनुसार प्रमाणीक काल वा अप्रमाणीक काल लिये त्याग अर पापसहित वस्तुतें निराला होना, अर उपवास की भावना, अर पंचसमिति, अर तीनगुप्तिका वर्णन है ॥९॥ विद्यानुवादके एककोटि दशलक्ष पदनिम अंगुष्ठप्रसेनादिक सातसै अल्पविद्या, अर रोहिणी आदि पांचसै महाविद्यानिक स्वरूप, सामर्थ्य अर इनका साधन मंत्र तंत्र पूजाविधानका, अर सिद्ध भई तिनका, फलका अर अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्ष व्यंजन छिन्न ये अष्टप्रकार निमित्तज्ञानका वर्णन है । ॥१०॥ कल्याणानुवादपूर्वके छब्बीसकोटि पदनिमें तीर्थंकर चक्रधर, बलदेव प्रतिवासुदेवादिकनिका गर्भकल्याणादिक महाउत्सवनिका अर इन पदनिका कारण षोडश भावना, वा तपविशेष आचरणादिकनिका, अर चंद्रमा सूर्य्य ग्रह नक्षत्रनिका गमन तथा ग्रहण शकुनादिकके फलका वर्णन है ॥११॥ प्राणप्रवादपूर्वके तेरहकोटि पदनिमें कायाकी चिकित्साका अष्टांग

आयुर्वेद जो वैद्यविद्या ताका भूतकर्मका अर जांगलिका अर इला पिंगलादिक स्वासोच्छ्वासका अर गतिक अनुसार दशप्राणनिके उपकारक द्रव्यनिका वर्णन है ॥१२॥ क्रिया विशालक नवकोटि पदनिमें संगीतशास्त्र छंद अलंकार बहत्तरि कला अर स्त्रीके चौसठिगुण, अर शिल्पादिज्ञान, अर चौरासी गर्भाधानादि क्रिया, अर एकसौ आठ सम्यग्दर्शनादिक्रिया, अर पच्चीस देववंदनादिक नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है ॥१३॥ त्रैलोक्यबिंदुसारपूर्व के साढा बारह कोटि पदनिमें त्रैलोक्यको स्वरूप, छब्बीस परिकर्म, अष्ट व्यवहार, च्यारि बीज, मोक्षका स्वरूप, मोक्षगमनका कारण क्रिया अर मोक्षसुखका वर्णन है ॥१४॥ ऐसे पिच्यासवै कोडि पचासलाख पाच पदनिमें चौदह पूर्व वर्णन किया।

अर दृष्टिवादांगको पांचवीं भेद चूलिका पांच प्रकार है। एक चूलिका के दोय कोटि नव लक्ष निरासी हजार दोय सै पद है। तिनमें जलगताचूलिका में जलका स्तम्भन, जलमें गमन, अग्निका स्तम्भन, भक्षण, अग्निऊपरि आसन, अग्निमें प्रवेशनादिकका कारण मन्त्रतन्त्र तपश्चरणका वर्णन है ॥१॥ अर स्थलगताचूलिका में मेरु कुलाचलादिकनिमें भूमिमें प्रवेश करनेकू अर शीघ्रगमनके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरण का वर्णन है ॥२॥ अर मायागताचूलिकामें मायारूप इंद्रजालादि विक्रिया मन्त्रतन्त्र तपश्चरणादि-

कका वर्णन है ॥३॥ आकाशगतचूलिकाम आकाशगमनका कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादिका वर्णन है ॥४॥ रूपगता चूलिकाम सिंह हस्ती तुरङ्ग मनुष्य वृक्ष हरिण शशा बलध व्याघ्रादिकनिके रूप पलटनेके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणका वर्णन है, तथा चित्राम माटी पाषाण काष्ठादिक इनका खोदना तथा धातुवाद रसवाद खान्यवादादिकनी रचनाका अर्थ है ॥४॥ पचचूलिकाके दशकोटि गुणचास लाख छियालीस हजार पद हैं।

इहा ऐसा जानना समस्त द्वादशाङ्गके एक घाटि एकठी प्रमाण अक्षर हैं। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ एते अपुनरुक्त अक्षर हैं। एक वार आया अक्षर दूसरा नाहीं आवै। इनमें चौसठि संयोग ताइ अक्षर हैं अर आगममें कह्या ऐसा मध्यमपदका प्रमाण सोलामै चौंतीस कोडि, तीयासी लक्ष, सात हजार, आठसौ अठासी १६३४ ८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इन अक्षरनिका प्रमाण का भाग दीए एकसौ बारा कोटि, तियासी लक्ष, अठावन हजार, पाचपद आए। तिनमें समस्त द्वादशाङ्ग हैं। और अवशेष अक्षर आठकोटि एक लक्ष आठ हजार एकसौ पचेत्तरि अङ्क रहे ८०१०८१७५। इन अक्षरनिका पूर्ण एकपद होय नाहीं, तातैं इनकू अगबाह्य कह्या। तिन अक्षरनिका सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक हैं।

सामायिक नाम प्रकीर्णकमें मिथ्यात्व कषायादिकके

क्लेशका अभावरूप नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदतें छहभेद रूप सामायिकका वर्णन है ॥१॥ बहुरि चौतीस अतिशय, अष्टप्रातिहार्य, परमौदारिक दिव्य देह, समवसरण सभा, धर्मोपदेशादिक तीर्थंकरनिका महात्म्यका प्रकाशरूप स्तवन प्रकीर्णक है ॥२॥ एक तीर्थंकरके आलम्बन रूप चैत्यालय प्रतिमाका स्तवन रूप प्रकीर्णक है ॥३॥ बहुरि पूर्वकृत प्रमादजनित दोषका निराकरणरूप अर्थि दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक, उत्तमार्थ ऐसें सप्त प्रकार प्रतिक्रमणका जामें वर्णन ऐसा प्रतिक्रमण नाम प्रकीर्णक है ॥४॥ बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार स्वरूप पंचप्रकार विनयका कथनरूप विनय नाम प्रकीर्णक है ॥५॥ बहुरि नमस्कारादिकी वन्दनाके अर्थि तीन प्रदक्षिणा, द्वादश शिरोनति, तीन शुद्धता, द्वादश आवर्त इत्यादिक नित्य नैमित्तिकक्रियाका जामें वर्णन ऐसा कृतिकर्म प्रकीर्णक है ॥६॥ बहुरि जामें साधुका आचारके गोचर आहारकी शुद्धताका वर्णन रूप दश वैकालिक प्रकीर्णक है ॥७॥ बहुरि च्यार प्रकार उपसर्ग तथा बाईस परीषहनिके सहनेके विधान अर इनके फलका वर्णन रूप उत्तराध्ययनप्रकीर्णक है ॥८॥ बहुरि साधुके योग्य आचरणका विधान अयोग्यसेवनका प्रायश्चित्तका वर्णन रूप कल्पव्यवहार नाम प्रकीर्णक है ॥९॥ बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रय साधुकूं ये योग्य हैं, ये अयोग्य

हैं, ऐसा विभागका वर्णनरूप कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥१०॥ बहुरि उत्कृष्ट संहननादियुक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके प्रभावतैं उत्कृष्टचर्याकरि वर्तते ऐसे जिनकल्पी, साधुनिके योग्य त्रिकालयोगादि आचरणका अर स्थविरकल्पीनिका दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना अर उत्कृष्टस्थानगत उत्कृष्टआराधनाका वर्णनरूप महाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥ ११ ॥ जामें भवन व्यन्तर ज्योतिष्क तथा कल्पवासीनिके विमाननिमें उत्पत्तिका कारण दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयमादिकका विधान तिनमें उपजनेका स्थान वैभवका वर्णनरूप पुण्डरीक नाम प्रकीर्णक है ॥१२॥ बहुरि महर्द्धिक देवनिमें इन्द्र प्रतींद्रादिकनिमें उत्पत्तिका कारण तपोविशेषादिक आचरणका कहने वाला महापुण्डरीक प्रकीर्णक है ॥१३॥ जामें प्रमादसूं उपज्या दोषनिका त्यागरूप निषिद्धिका प्रकीर्णक है ॥१४॥

ऐसे द्वादशांग सूत्र का ज्ञान है। सो तप का प्रभावतैं उपजै है। सो आप पढै है, अन्यकी बुद्धिप्रमाण शिष्यनिकूं पढावै है। तिन बहुश्रुतनिकी भक्ति है सो संसार परिभ्रमण का नाश करै है। बहुरि जो शास्त्रनि की भक्ति है सो हू बहुश्रुतभक्ति है। जो गुणनिमें अनुराग करना ताकूं भक्ति कहिये हैं। जो शास्त्रनि में अनुरागकरि पढै तथा शास्त्र के अर्थकूं अन्यकूं कहै, जो धनकूं लगाय शास्त्रनिको लिखावै, तथा अपने हस्तकरि शास्त्र लिखै तथा हीन

अधिक अक्षरकू मात्राकू शोधन करै तथा पढनेवालेनिकू शास्त्र लिखायदेवै, तथा व्याख्यान करै, पढावने, बचावने वालेनिकी आजीविकाकी थिरताकरि शास्त्रनिके ज्ञानाभ्यासका प्रवर्तन करावै, स्वाध्याय करनेके अर्थि निराकुल स्थान देवै सो ज्ञानावरण कर्मके नाश करनेवाली बहुश्रुत भक्ति है। बहुरि बहुमूल्य वस्त्रनिमें पूठा लगाय पट्टमय डोरि करि शास्त्रनिकू बांधै जो देखने श्रवण पठन करनेवालेनिका मनकू रञ्जायमान करै सो समस्त बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि सुवर्णकरि मनोहर घड़े हुये अर पचप्रकार रत्ननिकरि जटित, सैकड़ा पुष्पनिकरि शास्त्रकी सारभूत पूजा करै सो, श्रुतभक्ति संशयादिक-रहित सम्यग्ज्ञान उपजाय अनुक्रमतैं केवलज्ञान उपजावै है। जो पुरुष अपने मनकू इन्द्रियनिके विषयनितैं रोकि अर बारम्बार श्रुतदेवताका गुणस्मरण करके भली विधिकू बनाया पवित्र अर्घ श्रुतदेवता का उतारै है सो समस्त श्रुतका पारगामी होय केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकू प्राप्त होय है। ऐसे बहुश्रुत भक्ति नाम बारमी भावना वर्णन करी सो, निरन्तर भावो ॥ १२ ॥

१३ प्रवचन भक्ति भावना

अब प्रवचनभक्तिनाम, तेरमी भावनाकू वर्णन करै है। प्रवचन नाम जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपण किया

आगमका है। जिसमें षट्द्रव्यनिका, पचास्तिकायका, सप्ततत्वनिका, नवपदार्थनिका वर्णन है अर कर्मनिकी प्रकृतीनिका नाश करने का वर्णन है सो आगम है। जाका प्रदेश बहुत होय ताकी अस्तिकाय सज्ञा है। अर गुणपर्यायनिकू प्राप्त निरन्तर होय तातैं द्रव्य सज्ञा है। वस्तुपनाकरि निश्चय करिये तातैं पदार्थसज्ञा है। स्वभावरूपपनातैं तत्त्व सज्ञा है। सो इनकी विशेष कथनी आगे प्रकरण पाय कहसी। जैसे अन्धकारसयुक्त महलमें दीपक हस्तमें लेकरि समस्त पदार्थ देखिये है तैसे त्रैलोक्यरूप मन्दिरमें प्रवचनरूप दीपककरि सूक्ष्म स्थूल मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ देखिये है। प्रवचनरूप ही नेत्रनिकरि मुनीश्वरनि चेतनादि गुणनिके धारक समस्त द्रव्यनिका अवलोकन करै। जिनेंद्रके परमागमकू योग्यकालमें बहुत विनयतैं पढ़िये सो प्रवचन भक्ति है। कैसाक है प्रवचन—जामें षट्द्रव्य सप्ततत्व नव पदार्थनिका भेद समस्तगुणपर्यायनिका वर्णन है। जामें भूतकाल अनन्त भया अर भविष्यत् अनन्त होयगा अर वर्तमान तिनका स्वरूप वर्णन है। जामें अधोलोक की सप्तपृथ्वी अर नारकीनिका बसनेका, उत्पत्ति होनेका स्थाननिकू अर आयुकाय वेदना गत्यादिक समस्त का, अर भवनवासी देवनिका सातकरोड़ बहत्तरलाखभवन निका, अर तिनका आयु काय विभव विक्रिया भोगादिक-निका अधोलोक में वर्णन किया है।

जामें मध्यलोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप समुद्रनिका, अर तिनमें मेरु कुलाचल नदी द्रहादिकनिका, अर कर्मभूमिक विदेहादिक क्षेत्रनिका, अर भोगभूमिका, अर छिनवै अन्तर्द्वीपसम्बन्धी मनुष्यनिका, अर कर्मभूमिके भोगभूमिके मनुष्यनिका कर्तव्यका, अर आयुकाय सुख दुःखादिकनिका, अर तिर्यंचनिका, व्यंतरनिके निवास विभव परिवार आयु काय सामर्थ्य विक्रिया का वर्णन है। तथा मध्यलोकमें ज्योतिष्कदेव हैं तिनके विमान विभव परिवार आयु कायादिकका, तथा सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रनिका, चारक्षेत्रगत संयोगादिकका वर्णन है। बहुरि ऊर्ध्व लोकके त्रेसठपटलनिका, स्वर्गके अहमिंद्रक पटलनिका, इन्द्रादिक देवनिका विभव परिवार आयु काय शक्ति गति सुखादिकका वर्णन है। ऐसें सर्वज्ञकरि प्रत्यक्ष देखया त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यनिके उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना समस्त प्रवचन में वर्णन किया है। बहुरि कर्मनिकी प्रकृतिनिका बंध होने का, उदयका, सत्वका, संक्रमणादिकनिका समस्त वर्णन आगममें है।

बहुरि संसारतें उद्धार करने वाला रत्नत्रयका स्वरूप प्राप्त होनेका उपाय परमागम ही में है। बहुरि गृहस्थपर्यायमें श्रावकधर्मका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट चर्याका तथा श्रावकनिके व्रत संयमादिक व्यवहार परमार्थरूप प्रवृत्तिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है। बहुरि गृहका त्यागी

महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण, अर चौरासीलाख उत्तरगुण-
अर स्वाध्याय ध्यान अहार विहार सामायिकादि चारित्र
चर्याका, धर्मध्यान शुक्लध्यानादिकका, सल्लेखनामरणका,
समस्तचर्याका वर्णन प्रवचनमें है। बहुरि चौदह गुणस्थान
निका स्वरूप, तथा चौदह जीवसमासनिका, अर चौदह
मार्गणानिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है। तथा जीवनिक
एकसौ साढानिन्यानवै लाख कुलकोड अर चौरासीलाख
जातिका योनिस्थान प्रवचनहीतैं जानिये है। तथा च्यार
अनुयोग, च्यार शिक्षाव्रत, तीनगुणव्रत आगमतैं ही जानिये
है। तथा च्यार गतीनिका भेद, अर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान
सम्यक्चारित्रका स्वरूप भगवानका प्ररूप्या आगमहीतैं
जानिये है। बहुरि द्वादश तप, अर द्वादश अङ्ग, अर
चौदह पूर्व, चौदह प्रकीर्णकनिका स्वरूप प्रवचनहीतैं
जानिये है। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी फिरणी,
अर यामें छह छह भेदरूप कालमें पदार्थकी परिणतिका
भेदनिका स्वरूप आगमतैं जानिये है। बहुरि कुलकर चक्र-
धर बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इत्यादिकनिकी उत्पत्ति,
प्रवृत्ति, धर्म तीर्थका प्रवर्तन, चक्रीका साम्राज्य, वासुदेवादिक
निके निभर परिवार ऐश्वर्यादिक आगमहीतैं जानिये है।
बहुरि जीवादिक द्रव्यनिका प्रभाव आगमहीतैं जानिये है।
जातैं आगमकू भक्तिपूर्वक सेवनविना मनुष्यजन्म हू पशु
समान है। भगवान सर्वज्ञ वीतराग समस्त लोक अलोककू

अनन्तानन्त भूत भविष्यत वर्तमान कालवर्ती पर्यायनिकरि संयुक्त, एक समयमें युगपत्, क्रमरहित, हस्तकी रेखावत्, प्रत्यक्ष जाण्या, देख्या, तारि प्ररूपण किया स्वरूपकू सप्तऋद्धि, ग्यार ज्ञानधारी गणधरदेव द्वादशांगरूप रचना प्रगट करी।

इहां एसा विशेष जानना:—जो देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्तन करने वाले, अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुखरूप अन्तरंगलक्ष्मी, अर समवसरणादि बहिरंगलक्ष्मीकरि मंडित, अर इन्द्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक, चौंतीस अतिशय, अष्ट प्रातिहार्यादिक, अनुपम ऋद्धिकरि सहित, अर क्षुधा तृषादिक अष्टादश दोषरहित, समस्त जीवनिका परमोपकारक, अर लोकअलोकके अनंतगुण पर्यायनिका क्रमरहित, युगपत् ज्ञानका धारक, अर अनंतशक्तिका धारक, संसारमें डूबते प्राणीनिकू हस्तावलम्बन देनेवाला, समस्त जीवनिका दयालु परमात्मा परमेश्वर परब्रह्म परमेष्ठी स्वयंभू शिव अजर अमर अरहंतादि नामकरि विख्यात, अशरण प्राणीनिकू परमशरण, अनंतका परमौदारिक देहमें विष्ठता, गणधरादिक मुनीश्वरनिकरि वंदनीक है चरण जिनका, अर कण्ठ तालवा ओष्ठ जिह्वादिक चलनहलनरहित, इच्छाविना अनेक प्राणीनिका पुण्यके प्रभावतैं उपज्या, अर आर्य अनार्य समस्त देशके प्राणीनिका

समस्त पापका घातक, दिव्यध्वनिकरि भव्य जीवनिका मोह अन्धकारकू नष्ट करता, चमरनिकरि वीज्यमान, छत्रत्रया दिक प्रातिहार्यके धारक, रत्नमयसिंहासन, अर च्यार अगुल अतरीक्ष विराजमान, भगवान सकलपूज्य परम भट्टारक श्रीवर्धमानदेवाधिदेव मोक्षमार्ग के प्रकाशनेके अधि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनिकरि प्रगट किया। तिस अवसरमें निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीश्वरनिकरि वदनीक सप्तऋद्धिसमृद्ध च्यारि ज्ञानके धारक श्रीगौतम नाम गणधरदेव को कोष्ठबुद्धि आदिक ऋद्धिके प्रभावतैं भगवानभाषित अर्थकू नहीं विस्मरण होता, भगवानभाषित अर्थकू धारणकरि द्वादशांगरूप रचना रची।

जब चतुर्थ कालका तीन वर्ष साढा आठ महीना बाकी रह्या तदि श्रीवर्धमानस्वामी निर्वाण भये, पाछै गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी ए तीन केवली बासठ वर्ष पर्यंत केवलज्ञानकरि समस्त प्ररूपणा करी। पाछैं केवल-ज्ञानका अभाव भया। ता पाछैं अनुक्रमकरि विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पांच मुनि द्वादशांगके धारक श्रुतकेवली भए। तिनका एकसौ वर्ष का अवसर क्रमतैं भया। तिनके अवसरमें भगवान केवली-तुल्य पदार्थनिका ज्ञान अर प्ररूपणा रही। बहुरि विशा-खाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, धर्मसेन ये दश पूर्वके

धारक एकादश परम निर्ग्रन्थ मुनीश्वर अनुक्रमतैं एक सौ तीयासी वर्षमें भये। ते हू यथावत प्ररूपणा करी। बहुरि नक्षत्र, जयपाल, पाडुनाम, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पांच महामुनि एकादशांग विद्याका पारगामी अनुक्रमतैं दोय सौ बीस वर्षमें भये। तेहू यथावत प्ररूपणा करी। बहुरि सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य ये पंच महामुनि एक प्रथमअङ्गका पारगामी एकसौ अठारा वर्षमें अनुक्रमतैं भये। ऐसैं भगवान वीरजिनेन्द्रकू निर्वाण गये पाछैं छहसौ तिरासी वर्ष पर्यंत अङ्गका ज्ञान रह्या। पाछैं ऐसे कालके निमित्तैं बुद्धिवीर्यादिककी मन्दता होते श्री कुन्दकुन्दादि अनेक मुनि निर्ग्रन्थ वीतरागी अङ्गके वस्तुनिका ज्ञानी होते भए। तथा उमास्वामी भये। ऐसे पापतैं भयभीत ज्ञान विज्ञानसम्पन्न परमसंजमगुणमण्डित गुरुनिकी पारिपाटीतैं श्रुतका अव्युच्छिन्न अर्थके धारक वीतरागीनिकी परम्परा चली आई। तिनमें श्री कुन्दकुन्दस्वामी समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, रयणसार, अष्टपाहुडकू आदि लेय अनेक ग्रन्थ रचे ते अपार प्रत्यक्ष जानने पढ़नेमें आवैं हैं। इन ग्रन्थनिका जो विनयपूर्वक आराधन सो प्रवचन भक्ति है।

बहुरि दश अध्यायरूप तत्त्वार्थसूत्र श्री उमास्वामी रच्या। तिस तत्त्वार्थसूत्र ऊपरि सर्वार्थसिद्धि नाम टीका पूज्यपाद स्वामी रची है। अर तत्त्वार्थसूत्र ऊपर ही राज-

वार्तिक सोलह हजार श्लोकनिमें श्री अकलङ्कदेव रच्या। अर श्लोकवार्तिक बीस हजार श्लोकनिम विद्यानन्दिस्वामी रच्या। अर गन्धहस्ती नाम महाभाष्य चौरासी हजार श्लोकनिम समन्तभद्रस्वामी बड़ी टीका रची सो अबार इस अवसरमें मिले है नाहीं। अर गन्धहस्तिमहाभाष्य को आदि मंगलाचरण एकसौ पन्द्रह श्लोकनिम देवागमस्तोत्र किया। वाकी आठसौ श्लोकनिम टीका अष्टशती तो अकलङ्कदेव रची अर देवागम अष्टशती ऊपरि आप्तमीमांसा नामा जाकू अष्टसहस्री कहिए सो आठ हजार श्लोकनि में विद्यानदिजी रची। तिस अष्टसहस्री ऊपरि सोलहहजार टिप्पणी है। अर विद्यानन्दि स्वामी कृत आप्तकी परीक्षारूप तीनहजार श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा नाम ग्रन्थ है। तथा परीक्षामुख माणिक्यनन्दि रच्या। अर याकी बड़ी टीका प्रभाचन्द्राचार्य प्रमेयकमलमार्त्तण्ड बाराहजार श्लोकनिमें रची। अर छोटी टीका प्रमेयचन्द्रिका अनन्तवीर्यनाम आचार्य रची। अर अकलङ्कदेव कृत लघुयत्री ऊपरि न्यायमुद्रद चन्द्रोदय सोलहहजार श्लोकनि में प्रभाचन्द्रनाम आचार्य रच्या। तथा और हू न्यायक केई ग्रन्थ प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा तथा बालावबोधन्यायदीपका इत्यादिक जिनधर्मके स्तंभ, द्रव्य निका प्रमाणकरि निर्णय करते, अनेकान्तका भरया हुआ द्रव्यानुयोगग्रन्थ जयवन्त प्रवर्ते है।

परदेशमें, सुख अवस्था में, दुःखमें आपदामें, सम्पदामें, परमशरणभूत सम्यग्ज्ञान ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है। यातें शास्त्रनिक अभ्यास ही का सेवन करना। अपनी आत्माकू नित्य ज्ञानदान करो। अपनी सन्तानकू तथा शिष्यनिकू ज्ञानदान ही करो। ज्ञानदान देने समान कोटिधनका दान नहीं है। धन तो मद उपजावै है, विषयनिमें उरझावै, दुर्ध्यान करै, संसाररूप अन्धकूपमें डबोवे, तातैं ज्ञानदान समान दान नाहीं। एक श्लोक, अर्धश्लोक, एक पद मात्रहूका जो नित्य अभ्यास करै तो शास्त्रार्थका पारगामी हो जाय। विद्या है सो परमदेवता है। जो माता पिता ज्ञानाभ्यास करावै हैं ते कोटयां धन दिया। जे सम्यग्ज्ञानके दाता गुरु हैं तिनका उपकार समान त्रैलोक्यमें कोऊ उपकार नाहीं। अर जो ज्ञानके देनेवाला गुरुका उपकारकू लोपै है तिस समान कृतघ्नी नाहीं, पापी नाहीं। ज्ञानका अभ्यास विना व्यवहार परमार्थ दोउनिमें मूढ है। यातें प्रवचनभक्ति ही परमकल्याण है। प्रवचनका सेवनविना मनुष्य पशुसमान है। या प्रवचनभक्ति हजारों दोषनिका नाश करनेवाली है। याका भक्तिपूर्वक अर्घ उतारण करो। याहीतैं सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय है। ऐसे प्रवचनभक्ति नामा तेरमी भावना वर्णन करी ॥ १३ ॥

१४ आवश्यकापरिहाणिभावना

अब आवश्यकापरिहाणि नाम चौदमी भावना वर्णन

करैं हैं। अवश्य करनेयोग्य होय ताकू आवश्यक कहिये है। आवश्यकनिकी जो हानि नाहीं करनेका चिंतवन सो आवश्यकापरिहाणि नाम भावना है। अथवा इंद्रियनिके वश नाहीं सो अवश्य कहिये। अवश्य जे मुनि तिनकी जो क्रिया सो आवश्यक है। आवश्यककी हानि नाहीं करना सो आवश्यकापरिहाणि कहिये। ते आवश्यक छह प्रकार हैं। सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय कायोत्सर्ग। ये छह आवश्यक हैं सो कहिये हैं। जो देहतैं भिन्न, ज्ञानमय ही जाके देह ऐसा परमात्मास्वरूप, कर्मरहित चैतन्यमात्र शुद्ध जीवकू एकाग्रकार ध्यावता मुनि है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकू प्राप्त होय है। अर जो विकल्परहित शुद्ध आत्माके गुणनिमें आपका मन नाहीं विर्ठे तौ तपस्वी मुनि षट् आवश्यकक्रिया हैं तिनको पुष्ट करो, अङ्गीकार करो, अर आवते अशुभकर्मके आस्रवकू निराकरण करो, टालो। प्रथम तो सुन्दर असुन्दर वस्तुमें तथा शुभ अशुभ कर्मके उदयमें राग-द्वेष मति करो, तथा आहार वस्त्रादिकनिका लाभमें वा अलाभमें समभाव करो। स्तुतिमें-निंदामें, आदरमें अनादरमें, पाषाणमें-रत्नमें, जीवनमें-मरणमें रागद्वेषरहित परिणाम होना सो समता है। जातैं साम्यभावके धारक हैं ते बाह्य पुद्गलनिकू अचेतन अर आपतैं भिन्न अर अपने आत्मास्वरूपमें हानि वृद्धि अकर्ता जानि रागद्वेष छांडै है। अर आरतु शुद्ध

दृष्टारूप अनुभव करता रागद्वेषादिविकार रहित तिष्ठै है, ताकै साम्यभाव होय है सोही सामायिक है।

बहुरि भगवान जिनेन्द्रकै अनेक नामनिकरि स्तवन करना सो स्तवन नाम आवश्यक है। जो कर्मरूपमें वैरीकू आप जीते तातैं 'जिन' हो। अर अपने स्वरूपमें आपकरि आप तिष्ठो हो तातैं स्वयंभू हो। अर केवलज्ञानरूप नेत्रकरि त्रिकालवर्ती पदार्थानकू जानो हो तातैं त्रिलोचन हो। अर आप मोहरूप अन्धासुरकू मारया तातैं अन्धकांतक हो। आप घातियाकर्म रूप अर्धवैरीनिका नाश करकै ही अद्वितीय ईश्वरपना पाया तातैं अर्धनारीश्वर हो। आप शिवपद जो निर्वाणपद, ताम बसे तातैं आप शिव हो। पापरूप वैरीका संहार करो हो तातैं आप हर हो। लोकमें सुखका कर्त्ता तातैं आप शंकर हो। शं जो परम आनन्दरूप सुख ताम उपजे तातैं शंभू हो। वृष जो धर्म ताकरि दिपो हो तातैं आप वृषभ हो। अर जगतके सकल प्राणीनिमें गुणनिकरि बडे तातैं जगज्ज्येष्ठ हो। क जो सुख ताकरि समस्त जीवनिकी पालना करो तातैं आप कपाली हो। केवलज्ञानकरि समस्त लोक अलोक में व्याप्त हो रह तातैं आप विष्णु हो। अर जन्मजरामरणरूप त्रिपुरकू मारया तातैं आप त्रिपुरांतक हो। ऐसैं एकहजार आठ नामकरि आपका स्तवन इंद्र किया है। अर गुणनिकी अपेक्षा आपका अनन्त नाम है। ऐसै भावनि मे गुणचिंतवनकरि जो चौबीस तीर्थंकरनिका स्तवन करै है सो स्तवन नाम

आवश्यक है ॥ २ ॥

बहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनिमेंतैं एक तीर्थंकरकी वा अर्हत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनिमेंतैं एकहू मुख्यकरि स्तुति करना सो वन्दना आवश्यक है ॥ ३ ॥ बहुरि जो समस्त दिनमें प्रमादकै वश होय तथा कषायनिके वश होय, वा विषयनिमें रागद्वेषी होय कोऊ एकेन्द्रियादिक जीवनिका घात किया, तथा अनर्थक प्रवर्तन किया, वा सदोष भोजन किया, वा किसी जीवका प्राण पीडित किया, कर्कश कठोर मिथ्या वचन कहा, वा किसीकी निन्दा अपवाद किया, वा अपनी प्रशंसा करी वा स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राज्यकथा करी, तथा अदत्तधन ग्रहण किया, वा परकी धन में लालसा करी, तथा परकी स्त्रीमें राग किया, तथा धनपरिग्रहादिकमें लालसा करी, ते समस्त पाप खोटे किये बधक कारण किये। अब एसा पापरूप परिणामनिसू भगवान पंच परमगुरु हमारी रक्षा करहु। अब ए परिणाम मिथ्या होहू। पंच परमष्ठीके प्रसादतैं हमारे पापरूप परिणाम मति होहू। ऐसे भावनिकी शुद्धताकास्तें कायोत्सर्गकरि पंच नमस्कारके नव जाप्य करै। ऐसे समस्त दिनकी प्रवृत्तिहू संध्याकालका चितवनकरि पापपरिणामनिकू निंदना सो दैवसिक प्रतिक्रमण है। अर रात्रि सम्बन्धी पापका दूरिकरने के अर्थि प्रभात प्रतिक्रमण करना सो रात्रिक प्रतिक्रमण है। बहुरि मार्गमें चालनेमें दोष लग्या ताकी शुद्धिका जो

प्रतिक्रमण सो ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण है। एक पक्ष के दोष निराकरणक अर्थ पाक्षिक प्रतिक्रमण है, च्यार महीने क दोष निराकरणके अर्थ प्रतिक्रमण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है। एक वर्षके दोष निराकरण क अर्थ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण। समस्त पर्यायके कालका दोष निराकरणके अर्थ अन्त्यसन्यासमरणकी आदिमें प्रतिक्रमण है, सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। ऐसे सप्त प्रकार प्रतिक्रमण है। तिनमें गृहस्थकू सध्या अर प्रभात तो अपना नफा टोटा अवश्य देखना योग्य है। इहाँ जो सो पचास रुपयाका व्यवहार करनेवालाहू आधणनै ठिगाई जिताई देखै है, तो इस मनुष्य जन्मकी एक एक घड़ी कोटिधनमें दुर्लभ, गया पाछै नाहीं मिलै है, याका विचार हू अवश्य करना—जो आज मेरे परमेष्ठीका पूजनमें स्तवनमें कता काल गया, अर स्वाध्यायमें पचपरमगुरुके शास्त्रश्रवण में तत्त्वार्थकी चर्चामें, धर्मात्माकी वैयावृत्तिमें केता काल गया। अर घरके आरम्भमें कषायमें तथा विकथा करनेमें, विसवादमें, भोजनादिकमें, वा अन्य इन्द्रियनिके विषयनिमें, प्रमादमें, निद्रामें, शरीरके सस्कारमें, हिसादिक पच पापनिमें केता काल गया है। ऐसा चितवनकरि पापमें बहुत प्रवृत्ति भई होय तो आपकू धिक्कार दय, पापबधके कारणनिकू घटाय, धर्म कार्यमें आत्माकू युक्त करना योग्य है। पच मकालमें प्रतिक्रमण ही परमागममें धर्म कहा है। आत्मा

का हित अहितका विचारमें निरन्तर उद्यमी रहना योग्य है। यो प्रतिक्रमण आत्माकी बड़ी सावधानी करने वाला है अर पूर्वले किये पापकी निर्जरा करै है ॥ ४ ॥

बहुरि आगामी कालमें आपके आस्रवके रोकने के अर्थ पापनिका त्याग करना—जो आगे मैं ऐसा पाप कबहूँ मन वचन कायसों नांहीं करूंगा सो प्रत्याख्यान नाम आवश्यक है, सुगतिका कारण है ॥ ५ ॥ बहुरि च्यार अंगुलके अन्तराले दोऊ पग बरोबर करि खड़ा रहै, दोऊ हस्तनिकू लम्बायमानकरि देहमें ममता छांड़ि, नासिकाका अग्रमें दृष्टि धारि, देहतैं भिन्न शुद्ध आत्माकी भावना करना कायोत्सर्ग है। निश्चल पद्मासनतैं हू होय, अर खड़ा देहकरि हू होय, दोऊनिमें शुद्ध ध्यानका अवलम्बनतैं सफल है ॥ ६ ॥

ए छह आवश्यक परमधर्मरूप हैं। इनकू पूजि पुष्पांजलि क्षेपि अर्घ उतारण करना योग्य है। बहुरि ए छह आवश्यक परमागममें छह छह प्रकार कहा है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि षट् प्रकार जानना। शुभ अशुभ नामकू श्रवणकरि राग-द्वेष नांहीं करना सो नाम सामायिक है। कोऊ स्थापना प्रमाणादिक करि सुन्दर है, कोऊ प्रमाणादिकका हीनाधिककरि असुन्दर है। तिनके विषै राग द्वेषका अभाव सो स्थापना सामायिक है। सुवर्ण, रूपा, रत्न, मोती इत्यादिकू अर मणि

काष्ठ पाषाण कटक छार भस्म धूल, इत्यादिकनिम राग-द्वेष रहित सम देखना सो द्रव्य सामयिक है। महल उपवनादि रमणीक, श्मसानादिक अरमणीक क्षेत्रमे राग द्वेष छाडना सो क्षेत्र सामायिक है। हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म वर्षा शरत ये ऋतु अर रात्रि दिवस, अर शुक्लपक्ष कृष्ण पक्ष इत्यादिक काल विषै रागद्वेषको वर्जन सो काल सामयिक है। अर समस्त जीवनिके दुःख मति होहू एसा मैत्री भावकरि अशुभ परिणामनिका अभाव करना सो भाव सामायिक है। एस छह प्रकार सामायिक कहा।

अब छह प्रकार स्तवन कहै है। चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थ सहित एक हजार आठ नामकरि स्तवन करना सो नामस्तवन है। अर कृत्रिम अकृत्रिम अपरिमाण तीर्थंकर अरहंतनिके प्रतिबिंबनिका स्तवन सो स्थापना स्तवन है। अर समवसरणस्थित काल देह प्रभा, प्रातिहार्यादिकनिकरि स्तवन सो द्रव्यस्तवन है। अर कैलाश समेदाचल ऊर्जयंत (गिरनार) पावापुर चंपापुरादि निर्वाण क्षेत्रनिका तथा समवसरणमे धर्मोपदेशक क्षेत्र का स्तवन सो क्षेत्र का स्तवन है। अर स्वर्गावतरण जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाणकल्याणके कालका स्तवन सो काल स्तवन है। अर केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयभावका स्तवन सो भावस्तवन है। एसे छह प्रकार स्तवन कहा। यह तीर्थंकर वा सिद्ध तथा आचार्य उपाध्याय साधु इनम एक एकका नाम

का उच्चारण करना सो नाम वंदना है। अर अरहंत सिद्ध आचार्यादिकनिमें एकका प्रतिबिंबादिककी वंदना सो स्थापना वंदना है। तिनके शरीरकी वंदना सो द्रव्यवंदना है। अरहंत सिद्ध आचार्यादिकनिकरि व्याप्त जो क्षेत्र ताकी वंदना सो क्षेत्र वंदना है। तिनही पंचपरमगुरुनिमें कोऊ एक करि व्याप्त जो काल ताकी वंदना सो कालवंदना है। ये तीर्थंकरका वा सिद्धका वा आचार्यका वा उपाध्यायका वा साधुके आत्मगुणनिकू वंदना करना सो भाववंदना है। ऐसें छह प्रकार वंदना कही।

अब छह प्रकार प्रतिक्रमण कहे हैं। अतीत [illegible] उच्चारणमें कृतकारितअनुमोदनारूप मन वचन [illegible] दोषका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण [illegible] प्रतिक्रमण है। कोऊ शुभ अशुभ स्थापनाका [illegible] मन वचनकायतें उपज्या दोषतें आत्माकू निवार [illegible] सो स्थापनाप्रतिक्रमण है। अर द्रव्य जो आहार [illegible] आदिकके निमित्ततें मनवचनकायतें उपज्या [illegible] निराकरणके अर्थ द्रव्यप्रतिक्रमण है। क्षेत्रमें [illegible] आदिकके निमित्ततें उपज्या अशुभपरिणामजनित [illegible] निराकरण अर्थ क्षेत्रप्रतिक्रमण है। अर दिवस [illegible] ऋतु शीत [illegible] वर्षाकाल इनके निमित्ततें उपज्या [illegible] आचारका [illegible] नें कू प्रतिक्रमण करना सो कालप्रतिक्रमण है। अर [illegible] द्वेषादिभावनितें उपज्या दोषक [illegible] इनकू मार्ग

क्रमण कहे हैं।

बहुरि अयोग्य पापक कारण के नामउच्चारण करने का त्याग सो नाम प्रत्याख्यान है। अर अयोग्य मिथ्यात्वादिकके प्रवर्तानेवाली स्थापना करने का त्याग सो स्थापना प्रत्याख्यान है। पापबंधका कारण सदोष द्रव्य वा तपके निमित्त निर्दोष द्रव्यकाहू मनवचनकाय करि त्याग सो द्रव्यप्रत्याख्यान है। बहुरि असंजमका कारण क्षेत्र का त्याग सो क्षेत्र प्रत्याख्यान है। असंजमका कारण काल का त्याग सो काल प्रत्याख्यान है। मिथ्यात्व असंजम कषायादिकनिका त्याग सो भावप्रत्याख्यान है। ऐसे छह प्रकार प्रत्याख्यान वर्णन किया।

अब छह प्रकार कायोत्सर्गहू कहे हैं। पापके कारण कठोर कटुक नामादिकतै उपज्या दोषको दूर करनेके अर्थ कायोत्सर्ग करना सो नाम कायोत्सर्ग है। पापरूप स्थापना का द्वारकरि आया अतीचार दूर करनेकू कायोत्सर्ग करना सो स्थापनाकायोत्सर्ग है। सदोषद्रव्यके सेवनतैं तथा सदोष क्षेत्र-कालकें सेवनतैं संयोगतैं उपज्या दोष दूर करनेकू कायोत्सर्ग करना सो द्रव्यक्षेत्रकालकायोत्सर्ग है। मिथ्यात्व असंयमादिक भावनिकरि कीया दोष दूर करनेकू कायोत्सर्ग करना, सो भाव-कायोत्सर्ग है। ऐसे छह प्रकार छह आवश्यक वर्णन किये। अब गृहस्थके और हू छह प्रकारके आवश्यक हैं:—भगवान जिनेन्द्रका नित्यपूजन करना, निर्ग्रंथ

गुरुनिका सेवन, स्वरन, चितवन नि [illegible]
के प्रकरण आगमका नित्य स्वाध्याय करना, [illegible]
विषयनिकें रोकना, छहकाय जीवनकी दया [illegible]
सयम है। शक्तिप्रमाण नित्य तप करना, शक्तिप्रमाण [illegible]
दान देना, ये षट्कर्मरूप आवश्यक गृहस्थहू नित्य निरहू
अंगीकार करना योग्य है। ऐसे समस्त पापका नाश [illegible]
वाला, भावनिहू उज्वल करनेवाली आवश्यकनिकें [illegible]
अभावरूप चौदहमी भावना वर्णन करी ॥१४॥

१५. सन्मार्ग भावना

अब सन्मार्ग प्रभावना नाम पद्रमी भावना [illegible]
है। इहां सन्मार्ग जो मोक्षका सत्यार्थमार्ग [illegible] प्रभावना
प्रगट करना सो मार्ग प्रभावना है। सो सन्मार्ग रत्नत्रय है,
रत्नत्रय आत्माका स्वभाव है, याहू मिथ्यात्व, राग, द्वेष,
काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ये अनादितें मलीन
विपरीत करि राख्या है। अब परमागमका शरण पाय
मोहू मिथ्यात्वादिक दोषनिहू दूरिकर रत्नत्रयभावहू
उज्वल करना। यो मनुष्यजन्म, अर इन्द्रियपूर्णता, अर
ज्ञानशक्ति, अर परमागमका शरण, अर साधर्मीनिका सम्प-
गम, अर रोगादिकरि रहितपना, अर [illegible]
जीविका इत्यादिक, पुण्यरूप सामग्री पाय [illegible]
हू मिथ्यात्वकषायविषयादिकतें नाहीं [illegible]
जन्म दुःखनिका भरया संसारसमुद्रहू [illegible]

कालहू म नाहीं होयगा। जो सामग्री अपार मिली है सो अनन्तकालमेंहू अति दुर्लभ है। अर अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सकलसामग्री पाय करके हू जो आत्माका प्रभाव नाहीं प्रकट करूंगा तो अचानक काल आय समस्त संयोग नष्ट कर देगा। तातैं अब रागद्वेष मोह दूर करि जैसें मेरा शुद्ध वीतरागरूप अनुभवगोचर होय तैसें ध्यान स्वाध्यायमें तत्पर होना।

बहुरि नाटप्रवृत्ति भी उज्ज्वलकरि अन्तर्गत धर्मका प्रभाव प्रगटकरि मार्गप्रभावना करना, जाकू देखि अनेक जीवनिके हृदयमें धर्मकी महिमा प्रवेश करि जाय। जिनेंद्र का उत्सव ऐसा करना जाकू देखि हजारा लोकनिका मन जिनेन्द्रके जन्मकल्याणसमय जैसें इन्द्रादिक देव अभिषेक करि अपना जन्म सफल किया, तैसें जयजयकार शब्दकरि हजारा स्तवनका उच्चारणकरि, लोक आपकू कृतार्थ मान तन मन प्रफुल्लित हो जाय, तैसें अभिषेककरि प्रभावना करना, तथा जिनेन्द्रकी बड़ी भक्ति, अर बड़ी विनय, अर निश्चल ध्यानकरि ऐसे पूजन करो जाकू करते देखते अर शुद्धभक्तिके पाठ पढ़ते, तथा श्रवण करते, हर्षके अंकुरे प्रगट होंय, आनन्द हृदयमें नाहीं समावता बाह्य उछलने लग जाय। जिनकू देखि अन्यलोगनिका हू ऐसा परिणाम हो जाय,—अहो जैनीनिकी भक्ति आश्चर्यरूप है, जामें ये निर्दोष उत्तम उज्ज्वल प्रमाणीक सामग्री, अर ये उज्ज्वल सुवर्णके

रूपाके तथा काशा पीतलमय मनोहर पूजनके पात्र, अर ये भक्तिके रसकरि भरे अर्थसहित कर्णनिकू अमृतरूप सींचते शुद्ध अक्षरनिका उच्चारण, अर एकाग्ररूप विनय सहित शब्दनिक अनुकूल उज्ज्वल द्रव्यका चढावना, अरु ये परमशांतमुद्रारूप वीतरागके प्रतिबिंब प्रातिहार्यनिकरि भूषितका पूजना, स्तवन करना, नमस्कार करना, धन्य पुरुषनिकरि होय है। धन्य इनका मनवचनकाय, अर धन्य इनका धन, जो निर्बाधक होय ऐसे सन्मार्गमें लगावें है। ऐसा प्रभाव व्याप्त हो जाय। अर देखनेतें अर श्रवण करनेतें निकट भव्यनि के आनन्दके अश्रुपात भरने लगि जाय।

भक्ति ही संसारसमुद्रमें डूबतेनिकू हस्तावलम्बन देनेवाला है। हमारे भव भवमें जिनेंद्रकी भक्ति ही शरण होहु। एक जिनेंद्रका नित्य पूजन करना- तथा अष्टाह्निका पर्वमें, तथा षोडशकारण दशलक्षण रत्नत्रयपर्वमें समस्त पापके आरम्भ छांडि जिन पूजन करना, आनन्द सहित नृत्य करना, कर्णनिकू प्रिय ऐसे वाद्यनि बजावना तथा स्वर ताल मूर्छनादिसहित जिनेन्द्रके गुण गावनेतें समस्त सन्मार्ग प्रभावना है। सो जिनके हृदय में सत्यार्थ धर्म बसे है तिनके प्रभावना होय है। बहुरि जिनेन्द्रके प्ररूपे च्यार अनुयोगनिके सिद्धान्तनिका ऐसा व्याख्यान करना जाकू श्रवण करनेतें एकान्तका हठ नष्ट होय, अनेकान्त हृदयमें रहि जाय, पापनितें कांपने लगि जाय, व्यसन छूटि जाय, दयारूप-

धर्म में प्रवर्तन होजाय, अभक्ष्यभक्षणका त्याग होजाय ऐसा व्याख्यान करना जाके श्रवण करनेतैं हमारा मनुष्यनि के कुदेव कुगुरु कुधर्मके आराधनेका त्याग होयकै अर वीतराग देव, दयारूप धर्म, आरम्भ-परिग्रहरहित गुरुनिके आराधनमें दृढ़ श्रद्धान होजाय। तथा ऐसा व्याख्यान करना जो श्रवणकरि बहुत मनुष्य रात्रिभोजन, अयोग्य भोजन, अन्यायका विषय, परधनमें राग छाडि, व्रतनिमें शीलमें संयमभाव में सन्तोषभावमें लीन होय जाय। तथा ऐसा उपदेश करना जाकरि देहादिक पर द्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्माका अनुभव होना, पर्यायमें आपा छूटना, जीव अजीवादिक द्रव्यनिका प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि निर्णय होय, संशयरहित द्रव्यगुणपर्यायनिका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट हो जाना, मिथ्या अन्धकार दूर होना। ऐसा आगमका व्याख्यानतैं सन्मार्ग की प्रभावना होय।

बहुरि घोर तपश्चरण करना जो कायरनिकरि नाहीं धारण किया जाय, ऐसैं तपकरि प्रभावना होय है। क्योंकि विषयानुराग छाडि निर्वांछक होनेकरि आत्माका प्रभाव भी प्रकट होय है, अर धर्मका मार्ग भी तपहीतैं दिपै है। यो तप ही दुर्गतिका मार्गका नष्ट करनेवाला है। तप बिना कामादिक विषय ज्ञानकू चारित्रकू नष्ट करि दे है। तपके प्रभावतैं कामका क्षय होय रसनाइंद्रियकी चपलता नष्ट होय, लालसाका अभाव होय है। यातैं रत्नत्रयकी प्रभावना

तपहीतैं दृढ़ होय है। बहुरि जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकी प्रतिष्ठा करना, जिनेन्द्रका मन्दिर करावना यातैं सन्मार्गकी प्रभावना है। जातैं प्रतिष्ठा करावनेकरि जहा ताई जिनबिंब रहैगा तहां ताई दर्शन स्तवन पूजनादिकरि अनेक भव्य पुण्य उपार्जन करेंगे। अर जिनमन्दिर करावेंगे तिन गृहस्थनिका ही धन पावना सफल होयगा। पूजन, रात्रिजागरण, शास्त्र निका व्याख्यान, श्रवन पठन, जिनेन्द्रका स्तवन, सामायिक प्रतिक्रमण, अनशनादिक तप, नृत्य गान भजन उत्सव जिनमन्दिर होय तदि ही होय। जिनमन्दिर बिना धर्मका समस्त समागम होय ही नाहीं, यातैं बहुत कहा लिखि अपना परका परम उपकारका मूल प्रतिष्ठा करन मन्दिर करवाना है।

उत्कृष्टधर्मका मार्ग तो समस्त परिग्रह छाडि वैरागता अंगीकार करना है। परन्तु जाके प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान नाम कषायका उपशम भया नाहीं, ताकै गृहसम्पदा छाडी जाय नाहीं, अर धनसम्पदा बहुत होय तो प्रथम तो जिनका आप अन्यायसूं धन लिया होय ताकै निकट जाय क्षमा ग्रहण कराय उनका धन लौटा देना। बहुरि धन बहुत होय तदि नवीन धन उपार्जनका त्याग करना। बहुरि तीव्ररागके बधावनहारे इन्द्रियनिके विषयनिकी लालसा छाडि करि सन्तुष्ट होना। फिर जो धन धर्मसूं अपने मित्र हितू पुत्री बहण भूवा बन्धुजननिमें

निधन रोगी दुःखित होय तिनको वा अनाथ विधवा होय तिनको यथायोग्य देय संतोषित करना। बहुरि अपने आश्रित सेवकादिक वा समीप बसनेवाले तिनको यथायोग्य सन्तोषित करैं बहुरि पुत्रको स्त्रीको विभागादिक निरालो करि पीछैं जो द्रव्य होय ताकू जिनबिंबके करावनेमें, वा जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करावने में, तथा जिनेंद्रके धर्मका आधार सिद्धान्तनिके लिखावनेमें, कृपणता छांडि उदार मनतैं परके उपकार करने की बुद्धितैं धन लगावै है। जिस समान कोऊ प्रभावना नाहीं है। अर जे मंदिरप्रतिष्ठा तो करावैगा अर अनीतिकरि परधन राखि मेलैगा, अन्यायका धनकू ग्रहण करेगा, तो वाकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जायगी।

तथा प्रतिष्ठा करावनेवाला मंदिर करावनेवाला खोटा वनिज व्यवहार करै तथा हिंसादिक महापापनिमें, निंद्य अयोग्य वचननि में, तथा तीव्रलोभ में प्रवर्त, कुशील में प्रवर्त तथा अतिकृपणताकरि परिणामनि, संक्लेशरूप हुआ धनकू खरच करै तो समस्त प्रभावना नष्ट हो जाय। यातैं प्रतिष्ठाका करानेवाला, मंदिर करावनेवालाकी बाह्य प्रवृत्ति भी शुद्ध होय है ताकी प्रभावना होय है। तथा शिखर कलश घंटा चढ़ावने करि क्षुद्रघंटिका बांधनेकरि प्रभावना करै। तथा मंदिरनिमें चंदोवा घन्टा सिंहासनादि उत्तम उपकरण चढावनेकरि, अर स्वाध्यायमें प्रवृत्ति इत्यादिकरि

प्रभावना दु खका नाश करनेवाली होय है। प्रभावना शुद्ध आचरण करि होय है। यातें जिनवचनका श्रद्धानी होय सो धर्मकी प्रभावना ही करै। जैनीनिका गाढा प्रेम देखि अन्यक हृदयमें हू बड़ी महिमा दीसै। जैनीनिका धर्म जो प्राण जातें हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करै हैं, तीव्ररोग वेदना आवतेहू रात्रिमें औषधि जलादिकका पान नाहीं करै है, धन अभिमानादिक नष्ट होतें हू असत्य वचनादि नाहीं बोलै है, महाआपदा आवतें हू परधनमें चित्त नाहीं चलावै हैं, अपना प्राण जातें हू अन्य जीवका घात नहीं करै हैं, तथा शीलका दृढता परिग्रहपरिमाणता परमसंतोष धारण करनेतें आत्मप्रभावना होय। अर मार्गकी प्रभावना हू होय। तातें समस्त जग जाते हू, अर प्राण जातें हू अपने निमित्ततें धर्मकी निन्दा हास्य कदाचित् नाहीं करावै ताकै सन्मार्ग प्रभावना अंग होय है। इस प्रभावनाका महिमा कोटि जिह्वानितें वर्णन करनेको कोऊ समर्थ नाहीं है। यातें भो भव्यजन हो! त्रिलोकमें पूज्य जो प्रभावनामङ्ग ताकूं दृढ धारण करि याहीकू भक्ति करि, पूजो। याका महाअर्थ उतारण करो। जो प्रभावनाकू दृढ धारण करै है सो इन्द्रादिक देवनिकरि पूज्य तीर्थंकर होय है। ऐसें सन्मार्गप्रभावनानामा षट्मी भावना वर्णन करी ॥१५॥

१६ प्रवचनवात्सल्य भावना

अब प्रवचनवत्सलत्व नाम सोलमी भावना वर्णन करै

हैं। प्रवचन जो देव गुरु धर्म, इनमे जो वात्सल्य कहिये प्रीतिभाव, सो प्रवचनवत्सलत्व नाम कहिये है। जे चारित्र गुणयुक्त हैं, शीलके धारक हैं, परम साम्यभावकरि सहित, बाईसपरीषहनिके सहनेवाले, देहमें निर्ममत्व, समस्त विषय वाछारहित, आत्महितम उद्यमी, परके उपकार करनेमें सावधान ऐसे साधुजननिके गुणनिमें प्रीतिरूपपरिणाम सो वात्सल्य है। तथा व्रतनिक धारक, अर पापसू भयभीत, न्यायमार्गी, धर्मम अनुरागके धारक, मदकषायी, सतोषी एसे श्रावक तथा श्राविका, तिनक गुणनिमें, तिनकी सगतिमें अनुराग धारण करना सो वात्सल्य है। तथा जे स्त्रीपर्याय में व्रतनिकी हद्दू प्राप्त भये, अर समस्त गृहादिक परिग्रह छाडि कुटुम्बका ममत्व तजि, देहमें निर्ममत्वता धार, पच इन्द्रियनिके विषय त्यागि, एकवस्त्रमात्र परिग्रहकू अवलम्बन करि, भूमिशयन क्षुधा तषा शीतउष्णादि परीषहनिके सहनेकरि, सयमसहित ध्यान स्वाध्याय सामायिकादिक आवश्यकनिकरि युक्त, अर्जिकाकी दीक्षा ग्रहणकरि, सयमसहित काल व्यतीत करै हैं, तिनकै गुणनिमें अनुराग सो वात्सल्यभाव है। तथा मुनीश्वरनिके ज्यों वनमें निवास करते, बाईस परीषह सहते, उत्तम क्षमादि धर्मके धारक, देहमें निर्ममत्व, आपके निमित्त किया औषध अन्न पानादि नाहीं ग्रहणकरते, उनके तथा एक वस्त्र कोपीन विना समस्त परिग्रहके त्यागी उत्तम श्रावकनिके गुणनिमें अनुराग वात्सल्य है।

तथा देव गुरु धर्मका सत्यार्थ स्वरूपकू जानि दृढ़ श्रद्धानी धर्मम रुचिके धारक अव्रतसम्यग्दृष्टिम वात्सल्यता करहू। इस ससारम अपने स्त्री पुत्र कुटुम्बादिकनिमें, तथा देहमें, इन्द्रियनिके विषयनिके साधकनिमें अनादितैं राग लगि रह्या है। पूर्वला अनादि सस्कार ऐसा है सो तिर्यंच हू अपने स्त्री पुत्रनि में, विषयनिमें अति अनुरागी होय याहीके अर्थि कटें हैं, मरें हैं, अन्य को मारें हैं, एसा कोऊ मोहका अद्भुत माहात्म्य है। ते धन्य पुरुष हैं ने सम्यग्ज्ञान तैं मोहकू नष्टकरि आत्माके गुणनिमें वात्सल्यता करें हैं। ससारी तो धनकी लालसाकरि अति आकुल भए धर्ममें वात्सल्यता त्यागें हैं। अर ससारनिके धन वधै है तदि अतितृष्णा वधै है। समस्त धर्मका मार्ग भूल जाय। धर्मात्मनिमें दूरहीतैं वात्सल्यता त्यागै है। रात्रि दिन धन सपदा के बधावनेमें एसा अनुराग वधै है-जो लाखनिका धन हो जाय तो कोटिनिमें वाछा करता, आरम्भ परिग्रहकू बधावता, पापनिम प्रवीणता बधावता, धर्म में वात्सल्य नियमतैं छाडे है। जहा दानादिकनिम परोपकारमें धन लगावता दीसै तहा दूरहीतैं टलि निकलै है। और बहु आरम्भ बहुपरिग्रह अतितृष्णातैं समीप आया नरकका मार्ग ताकू नाहीं देखै है। तामें पचमकालका धनाढ्या तो पूर्व मिथ्यात्वमें कुपात्र दान कुदानमें रचि ऐसा कर्म बाध आया है सो नरक तिर्यंचगतिकी परिपाटी असंख्यातकाल अनतकाल पर्यन्त

नाहीं छूटै। उनका तन मन वचन धन धर्मकार्यमें नाहीं लागै है। रात्रिदिन तृष्णा अर आरम्भ करि क्लेशित रहैं। तिनके धर्मात्मामें अर धर्मके धारणमें कदाचित् वात्सल्यता नाहीं होय है। अर धन रहित धर्मात्मा हू होय ताकू नीचा मानैं है।

तातैं भो आत्मन्! हितके वाञ्छक हो, धनसंपदाकू महामदकी उपजावनेवाली जानि, अर देहकू अस्थिर दुखदाई जानि, कुटुम्बकू महाबंधन मानि, इनसू प्रीति छांडि अपने आत्माकू वात्सल्य करो। धर्मात्मामें, व्रतीनिमें, स्वाध्यायमें जिनपूजनमें वात्सल्यता करो। जे सम्यक्चारित्ररूप आभरणकरि भूषित साधुजन हैं तिनको स्तवन करै हैं गौरव करै हैं, कुगति का नाश करै हैं। वात्सल्यगुण के प्रभाव करकै ही समस्त द्वादशांग विद्या सिद्ध होय है। जातैं सिद्धान्तसूत्रमें अर सिद्धान्तका उपदेश करनेवाला उपाध्यायमें साची भक्तिके प्रभावतें श्रुतज्ञानावरणकर्मका रस सूख जाय है तदि सकल विद्या सिद्ध होय है। वात्सल्यगुणकें धारकू देव नमस्कार करै है। अर वात्सल्य करकै ही अठारह प्रकार बुद्धि ऋद्धि अर आकाशगामिनी विक्रिया ऋद्धि दोय प्रकार, चारण ऋद्धि अनेक प्रकार, अर अष्ट प्रकार विक्रियाऋद्धि, तीन प्रकार बलऋद्धि, सप्तप्रकार तपऋद्धि, छह प्रकार रसऋद्धि छहप्रकार औषधऋद्धि, दोयप्रकार क्षेत्रऋद्धि इत्यादि अनेक शक्ति प्रकट होय

हैं। यहां ऋद्धिनिका स्वरूप कहिये तो कथनी अधिक जाय तातैं नाहीं लिख्या है। अर्थप्रकाशिका दिनिमें लिख्या है तहांतैं जानना।

वात्सल्य करकै ही मन्दबुद्धिनिकै हू मतिज्ञान श्रुतज्ञान विस्तीर्ण होय हैं। वात्सल्य के प्रभावतैं पापका प्रवेश नाहीं होय है। वात्सल्यकरके तप हू भूषित होय है। तप में उत्साह बिना तप निरर्थक है। यो जिनेन्द्र को मार्ग वात्सल्य करिही शोभाकू प्राप्त होय है। वात्सल्यकरिही शुभ ध्यान ऋद्धिकू प्राप्त होय है। वात्सल्यतैं ही सम्यग्दर्शन निर्दोष होय है। वात्सल्य करके ही दान दिया कृतार्थ होय है। पात्रमें प्रीति बिना तथा देनेमें प्रीति बिना दान निंदा का कारण है। जिनवाणी में वात्सल्य नाहीं, विनय नाहीं ताकू यथावत् अर्थ नाहीं दीखेगा, विपरीत ग्रहण करेगा। इस मनुष्य जन्मका मण्डन वात्सल्य ही है। वात्सल्यरहित बहुत मनोज्ञ आभरण वस्त्र धारण करना हू पद पद में निंद्य होय है। अर इस लोकका कार्य जो यश को उपार्जन, धर्मको उपार्जन, धनको उपार्जन सो वात्सल्य हीतैं होय है। अर परलोक जो स्वर्गलोक में महद्धिक देवपना सो हू वात्सल्य हीतैं होय है। वात्सल्य बिना इस लोकका समस्त कार्य नष्ट हो जाय, परलोकमें देवादिगति नाहीं पावै है।

बहुरि अर्हंतदेव, निर्ग्रंथगुरु स्याद्वादरूप परमागम दयारूप धर्म में वात्सल्य है सो संसारपरिभ्रमणका नाश करि निर्वाणकू प्राप्त करै है। तथा वात्सल्यतैं ही जिनमन्दिरका वैयावृत्य, जिनसिद्धान्तका सेवन, साधर्मीनिका वैयावृत्य तथा धर्म म अनुराग, दान देने में प्रीति, य समस्तगुण वात्सल्यतैं ही होय हैं। जे षट्काय क जीवनि मे वात्सल्य किया है ते ही त्रैलोक्य में अतिशय रूप तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन करैं हैं। यातैं जे कल्याण क इच्छुक हैं ते भगवान जिनेन्द्रका उपदेश्या वात्सल्यगुणकी महिमा जानि षोडशमा अग जो वात्सल्य ताका स्तवनकरि पूजनकरि याका महान अर्घ उतारण करै हैं। सो दर्शनकी विशुद्धता पाय बहुरि तप आचरणकरि, अहमिंद्रादि देवलोकहू प्राप्त होय फिर जगतका उद्धारक तीर्थंकर होय निर्वाणहू प्राप्त होय है। षोडश कारण धर्मकी महिमा अचिंत्य है। जातैं त्रैलोक्यमें आश्चर्यकारी अनुपम विभव क धारक तीर्थंकर होय हैं। ऐसे षोडश भावना का संक्षेप विस्ताररूप वर्णन किया ॥ १६ ॥